अध्याय : चार

पुरस्कृत महिला साहित्यकारों के उपन्यासों में वर्णित स्त्री जीवन का अध्ययन

4.1 पितृसत्तात्मक समाज एवं अस्मितामूलक प्रश्न : सामान्य परिचय

पितृसत्ता को समझने से पहले पैतृकवाद को समझना आवश्यक है| पैतृकवाद का सामान्य अर्थ कमजोर पर ताकतवर का अधिकार होता है| इसे स्पष्ट करते हुए उमा चक्रवर्ती लिखती हैं - "एक प्रभुत्त्वशाली (Dominant) समूह और अधीन (Subordinant) समूह (जिसे कमजोर समझा जाता है) के बीच संबंध को पैतृकवाद तब कहा जाता है, जब वर्चस्व को परस्पर दायित्वों और एक-दूसरे के अधिकारों के माध्यम से मंद (Mitigate) कर दिया जाता है| ...पैतृकवाद पितृसत्ता का उपभाग है, जिसमें पिता का अपने परिवार के सभी सदस्यों पर पूर्ण नियंत्रण रहता है| बदले में उसका दायित्व होता है कि वह उन्हें आर्थिक सहायता और संरक्षण मुहैया कराए|"[1] पितृसत्ता अंग्रेजी के पैट्रियार्की (petriarchy) का हिंदी पर्याय है| इसका साहित्यिक अर्थ "the rule of the father"[2] अर्थात् पिता का शासन होता है| ऐतिहासिक तौर पर पितृसत्तात्मक शब्द का प्रयोग परिवार के पुरुष मुखिया के निरंकुश शासन के सन्दर्भ में किया जाता रहा है| लेकिन आज के समय में इसकी परिभाषा समाज व्यवस्था के सापेक्ष हो गयी है जिसमें शक्ति परिवार के पुरुष वर्ग के हाथों में निहित होती है| पितृसत्ता एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसके पदानुक्रम में पुरुष पहले स्थान पर, स्त्री दूसरे स्थान पर और आज के समय में तीसरे स्थान पर अन्य को रखा गया है| यहाँ अन्य कहने से तात्पर्य उन वर्ग से है जो कभी अपनी शारीरिक अपूर्णता की वजह से समाज में नकारे गए तो कभी जातिगत भिन्नता की वजह से| पितृसत्ता दरअसल एक ऐसी सोच है जो व्यवहारों के माध्यम से मूर्त होती है| पितृसत्ता एक रोग की तरह है जो किसी भी धर्म, वर्ग, समुदाय और किसी भी जेंडर में हो सकता है| 'धीरेन्द्र वर्मा' पितृप्रधान समाज को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि - "पितृप्रधान समाज का निर्माण मातृसत्तात्मक के व्यवस्था के बाद बाद हुआ| काल के प्रारंभ से नारी की शारीरिक अवस्था दुर्बल हो गयी और पुरुष धीरे-धीरे शक्ति संचय करता गया

और एक दिन वह परिवार का स्वामी बन बैठा| ...जो स्थिति कुल-परिवार में पहले नारी या माता की रही थी, वही अब पुरुष या पिता की हुई|"[3] इससे यह स्पष्ट है कि समाज में किसी एक लिंग का वर्चस्व हमेशा रहा है| यह सन्दर्भ उस समय का है जब लोग जंगलों में रहा करते थे| तब समाज नहीं कबीला हुआ करता था| लेकिन आज की परिस्थिति इसके विपरीत है| आज मनुष्य ज्ञान और विज्ञान के बल पर सभ्य समाज का निर्माण करने के लिए जाना जाता है| इस मानव निर्मित समाज में जब कोई एक विचारधारा कुछ सीमित वर्ग की उन्नति के लिए कार्य करे और अन्य को उसके अधीन रहने के लिए बाधित करे तो विरोध होना लाजमी है| इस विचारधारा की भूमिका में सिर्फ पुरुष वर्ग शामिल नहीं है, इसमें स्त्रियों की भी बराबर की हिस्सेदारी देखी गई है| इसे गर्डा लर्नर के शब्दों में समझा जा सकता है - "पितृसत्ता की व्यवस्था को सदियों तक अक्षुण्ण बनाए रखने में महिलाओं का 'सहयोग'| विचारधारा के तौर पर पितृसत्ता की व्यवस्था के दो पहलू हैं; एक, यह सहमति उत्पन्न करती है : महिलाएं पितृसत्ता के बने रहने में 'सहायता' देती हैं, क्योंकि वह पुरुष वर्चस्व की विचारधाराओं को आत्मसात करने के माध्यम से उसके प्रति अपनी सहमति प्रदान करती हैं|"[4] अतः जब भी स्त्री स्वाधीनता की बात की जाती है तो यहाँ पहला सवाल ही यह उठाया जाता है कि किससे किसकी स्वाधीनता| राजेन्द्र यादव पितृसत्तात्मक समाज की संरचना में स्त्री स्वाधीनता के सन्दर्भ में पूछते हैं कि - "स्त्री की स्वाधीनता किससे? पुरुष से?"[5] आगे इसपर अपना मत देते हुए लिखते भी हैं कि - "पुरुष से मुक्ति की नहीं, पुरुष की मुक्ति की है जिससे दोनों एक-दूसरे की मुक्ति के संगी बन सकें|"[6]

वर्तमान समय में अस्मिता से जुड़ा प्रश्न एक चिंतनीय विषय है| अस्मिता कहने से तात्पर्य पितृसत्तात्मक विचारों से मुक्ति है| समाज के उन तमाम दायरों और जकड़न से मुक्ति और समान अधिकार पाना ही अस्मिता कहलाता है| स्त्री, दलित, थर्ड जेंडर.... आदि सभी जो हाशिये पर धकेल दिए गए थे आज अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहे है| संविधान में आज भले ही इन सबको उचित स्थान दे दिया गया हो लेकिन समाज में आज भी एक बड़ा तबका इनसे अपनी असहमति

समय-समय पर दिखाता रहता है| अतः आज के उत्तर आधुनिक दौर में यह ज्यादा जरूरी है कि कानूनी रूप से ही नहीं बल्कि मानसिक स्तर पर भी हम एक मत हों|

हाशिये पर खड़ा समाज आज धीरे-धीरे केंद्र में अपनी जगह बना रहा है| स्त्रियों के अधिकार की लड़ाई काफी पुरानी है| स्त्रियों के संघर्ष की लड़ाई का एक पूरा इतिहास है जिससे हम भली-भांति परिचित हैं| बीसवीं सदी के अंत तक आते-आते स्त्रियाँ अपने तमाम अधिकारों को प्राप्त कर चुकि थीं जो उसे इस सभ्य समाज में पुरुष के बराबर करता था| आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सभी जगहों पर अपनी उपस्थिति को जाहिर करती हुई आज स्त्री उस पुराने ढाँचे से बाहर तो आ गई है, लेकिन मानसिक स्तर पर समाज आज भी उसे दोयम दर्जे का ही मानता है| स्त्रियों के अस्मिता से संबंधित उसके दायरे को बताते हुए नारीवादी विशेषज्ञ 'निवेदिता मेनन' लिखती हैं - "औरत की मौजूदा अधीनता, अपरिवर्तनीय जैविक असमानताओं से नहीं पैदा होती हैं बल्कि यह ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों, विचारधाराओं और संस्थाओं की देन हैं जो महिलाओं की वैचारिक तथा भौतिक अधीनता को सुनिश्चित करती है| इसलिए नारीवादी विचारक लिंग-भेद आधारित काम, यानि लिंग के आधार पर श्रम विभाजन और उससे भी ज्यादा आधारभूत स्तर पर यौनिकता और प्रजनन के प्रश्न को एक ऐसे विषय के रूप में देखते हैं| जिसे 'जैविक संरचना' जो प्राकृतिक और इसलिए अपरिवर्तनीय मानी जाती है कि दायरे से बहार रखकर देखा जाना चाहिए|"[7]

समाज में अपने बुनियादी हक के लिए स्त्रियों ने ऐसी कई लड़ाइयां लड़ी हैं जो आज भी इतिहास के पन्नों में दर्ज है| ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो ऐसे कई नाम सामने आते हैं जो स्त्री के सशक्त रूप की पहचान कराता है| गार्गी, मैत्रयी, घोष, श्रद्धा, कामायनी, अपाला, सूर्या, देवयानी, शची, शाश्वती, लोपामुद्रा आदि ऐसी तमाम विदुषी अपने चिंतन और विद्वता से समाज को पूर्ण करती रही हैं| बौद्ध काल में वृद्ध भिक्खुनियों के माध्यम से स्त्री की स्थिति का अंदाजा लगा सकते हैं| इस सन्दर्भ में उमा चक्रवर्ती का यह प्रसंग उलेखनीय है - "वृध्द बौध्द भिक्षु 'थेर' (स्थविर) कहलाते थे और वृध्दा बौध्द भिक्खुनियाँ 'थेरी' (स्थविराएँ) कहलाती थीं| इन वृध्दाओं ने

सामाजिक बन्धनों से अपनी मुक्ति के तथा स्त्री-पुरुष की समानता के जो गीत गाये, वे 'थेरीगाथा' कहलाते हैं, क्योंकि उनके इन गीतों को गाने वाली स्त्रियों के आध्यात्मिक अनुभवों के साथ-साथ उनके उनके जीवन की संक्षिप्त कहानियाँ कही गयी हैं|.... ये रचनाएँ स्त्रियों के अपने लेखन तथा अपने बारे में किये गए लेखन के सबसे प्राचीन प्रमाण हैं| इससे पता चलता है कि स्त्रियों का आध्यात्मिक अनुभव पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभव से भिन्न नहीं है| जैसे पुरुष अपनी मुक्ति या निर्वाण के बारे सोचते हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी सोचती हैं|"[8] इससे ऐसा बिलकुल नहीं समझना चाहिए कि उस समय में स्त्री-पुरुष में समानता थी| हाँ इतना जरूर था कि जो स्त्रियाँ बौद्ध धर्म में दीक्षित थी वो कुछ हद तक शिक्षित थी जो आगे के समय में समाज के लिए प्रेरणादायक बनीं|

प्राकृत काल में स्त्रियों की दशा उस समय के शासन तंत्र के द्वारा बनाये गये नियम व्यवस्था पर आधारित था, जो उन्हें रूढ़ करता गया| प्राकृत से आदिकाल तक के राजतंत्र में स्त्रियों की स्थिति पिंजरे में बंद पशु के समान थी| हर्षवर्धन से लेकर पृथ्वीराज के शासन काल तक और चोल एवं शक के समय में महलों में रहने वाली राजकुमारियों और रानियों की दशा भी कमोबेश ऐसी ही थी| इतिहास के पन्नों में ऐसे कई उदाहरण हैं जो स्त्री को भोग-विलास की वस्तु के रूप में दर्शाता है| एक राजा की कई रानियां होना तब सामान्य बात होती थी| ऐसे में उस समय स्त्री की स्थिति को समझा जा सकता है| बिहारी के दोहों में इसकी प्रमाणिकता मिलती है| जयपुर के मिर्जा महाराज जयसिंह की भोग-विलासिता को बिहारी के इस दोहे से समझा जा सकता हैं -

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहि काल,

अली कली ही सों बंध्यों, आगे कौन हवाल|"[9]

मध्यकालीन दौर तक आते-आते स्त्रियाँ पूर्णतया पुरुषों पर निर्भर हो गई थीं| अब तक वो घर की शोभा के रूप में प्रतिष्ठित की जा चुकी थीं| यह समय स्त्री की चिर-पराधीनता को दर्शाता है| इस समय के कई लेखकों के लेखन में स्त्रियों को पुरुष से छोटा और जीवन मार्ग में बाधा

बताया गया| तुलसीदास लिखते हैं- 'ढोर, गंवार, शुद्र, पशु, नारी सकल ताडन के अधिकारी|' कुछ लेखक ने स्त्री को 'माया महाठगनी' बताया तो कुछ ने ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में बाधा बताया| इस समय में स्त्रियों को कई उपाधियां प्राप्त थी जैसे- मोहिनी, ठगनी, नागिन, माया आदि|

हर युग में स्त्रियाँ सामान्यतया एक सी ही होती थीं लेकिन कुछ सशक्त स्त्रियाँ भी थी| मध्यकाल में सूरदास की गोपियाँ और मीराबाई को प्रेरणाश्रोत के तौर पर हम देख सकते हैं| भ्रमर-गीत सार में उद्धव संवाद में गोपियों की मुखरता और उन्मुक्त प्रेम को देखा जा सकता है| मीराबाई ने अपनी उन्मुक्त प्रवृत्ति से रूढ़ियों को दरकिनार कर दिया| इनकी कुछ पंक्तियों से यह बात स्पष्ट होती है -

"लोक लाज कुल मानि जगत की / दादू बहाय जस पानी

अपने घर का पर्दा कर ले / मैं अबला बौरानी |"[10]

मीराबाई के अदम्य साहस को रेखांकित करते हुए मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं - "मीरा ने उस आतंककारी लोक और उसके भयावह धर्म के विरुद्ध खुला विद्रोह किया| उनकी कविता में एक ओर सामंती समाज में स्त्री की पराधीनता और उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह निवेश और उससे स्वतंत्रता के लिए दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है|"[11] अतः हम पाते है कि मध्यकाल में मीरा, सहजोबाई, और रामो जैसी स्त्रियाँ सामाजिक जीवन में और रजिया सुल्तान, मुमताज और नूरजहाँ जैसी स्त्रियाँ राजनीतिक क्षेत्र में अपनी अस्मिता के लिए पुरुष प्रधान समाज से समय-समय लोहा लेती रही हैं|

पुनर्जागरण काल या नवजागरण काल आधुनिक युग का प्रारंभ माना गया है| यह वह समय था जब न सिर्फ राष्ट्र की पराधीनता के लिए लोग एकमत होने शुरू हुए बल्कि स्त्रियों के अधिकारों से जुड़े सवालों पर भी गंभीरता से प्रहार किया| राजाराम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद विद्यासागर, ज्योतिबा फुले जैसे समाज सुधारकों द्वारा स्त्री से जुड़ी हर समस्याओं,

कुप्रथाओं के विरोध में जमकर लड़ाई लड़ी गई और काफी हद तक जीत भी हासिल हुई| स्त्री अस्मिता की लड़ाई से जुड़े कई नाम इस समय में उभर कर सामने आते हैं जिनका योगदान आज के समय में स्त्रियों के लिए वरदान की तरह है| सरोजनी नायडू, सावित्रीबाई फुले, पंडित रमाबाई, ऐनी बेसेंट, विजयालक्ष्मी पंडित आदि ऐसे ही नाम है जिनका योगदान समाज में सराहनीय है|

आजादी की लड़ाई में भी स्त्रियों की सक्रियता को नजरंदाज नहीं किया जा सकता| आजादी मिलने के बाद स्त्री-पुरुष को मौलिक अधिकार के तहत उनके लिए पूर्ण समानता कानून का प्रावधान बनाया गया| 1956 के उतराधिकार अधिनियम के तहत लड़की को लड़के की तरह सह उत्तराधिकारी माना गया| सन 1955 में स्त्रियों को मत देने का अधिकार दिया गया, साथ ही विशेष आधारों पर तलाक देने का भी प्राबधान बनाया गया| अनुच्छेद 39-51 के तहत समान कार्य, समान वेतन कानून बना, साथ ही बहुपत्नी विवाह पर रोक लगाया गया| उन तमाम जद्दोजहद और एक लम्बी लड़ाई के बाद अब स्त्रियाँ आत्मनिर्भर होने लगीं| आर्थिक सम्पन्नता अब स्त्री को देवी रूप से बाहर निकाल कर सामान्य मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने लगा है|

1975 ई. को विश्व स्तर पर सयुक्त राष्ट्र संघ ने 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित किया था| इस तरह की घोषणा से स्त्री को अपने से जुड़े और कई नए पक्ष को देखने और समझने का मौका मिला| एक लम्बी लड़ाई के बाद स्त्री रूप में आए बदलाव पर टिप्पणी करते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं - "आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है उसकी नियति में बदलाव आया है उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य, दर्शन, उसका मन-मिजाज सभी तो बदल रहा है|"[12]

आज इतने सारे बदलाव के बाद भी स्त्रियों के लिए रास्ता उतना सुलभ है नहीं| सिर्फ कागजी बदलाव से मानसिक स्तर में परिवर्तन नहीं होगा इसके लिए समाज को और अधिक संवेदनशील होने की आवश्यकता है| पुरस्कृत महिला साहित्यकारों के उपन्यासों में स्त्रियों की वास्तविक स्थिति को देखा जा सकता है| इसमें कुछ पात्र सशक्त हैं तो कुछ पुराने ढर्रे को स्वीकार कर अपना जीवन-यापन कर रही हैं| सही मायनों में आधुनिक हुए दौर में कुछ ही स्त्रियाँ हैं जो

मुखर हुई हैं| हमारे समाज की बनावट ऐसी है कि स्त्रियों को पता भी नहीं चलता कि वो रूढ़ियों में फँसकर एक गुलाम की जिन्दगी जी रही हैं| ऐसा इसलिए भी होता है क्योंकि शुरू से ही स्त्रियों ने अपने आस-पास ऐसा होते देखा| यही कारण है कि वो समझ नहीं पाती कि दरअसल जो देखती हुई वह पली बढ़ी वो गलत है, पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाया गया एक जाल है| उपन्यास में स्त्री के ऐसे ही कई पक्षों को उजागर किया गया है|

स्त्रियों के अलावा हासिये पर खड़ा एक और तबका मुखर होता नजर आ रहा है, जो तृतीय लिंग के नाम से जाना जाता है| थर्ड जेंडर दरअसल समाज के प्रजनन संरचना से अलग है, जो अपनी अस्मिता की लड़ाई के लिए अपनी आवाज समय-समय पर उठाता रहा है| सरकार द्वारा इनके लिए कानून तो बनाया गया है, परन्तु आज भी समाज में उनकी स्थिति स्त्री और पुरुष की तरह सामान्य नहीं है| एल.जी.बी.टी.क्यू. भी हमारे ही समाज का हिस्सा हैं जिसे आज तक पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया गया| मनुष्य का जन्म और उसके शरीर की बनावट इंसानों के हाथ में नहीं होती है, यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है| इस आधार पर उसमें भेद करना अमानवीयता को दर्शाता है| 'किन्नर' भी हमारे समाज का ही हिस्सा हैं, जो लैंगिक रूप से न पुरुष होते हैं और न स्त्री| विष्णु तथा वायु पुराणों की मान्यता के अनुसार सुनक्षत्र के पुत्र का नाम किन्नर बताया गया है| साथ ही किन्नर संगीत के देवता माने गए है, जिनका निवास स्थान कैलाश पर्वत कुवेरपुरी है| ऐसी प्रसिद्धि है कि किन्नरों की उत्पत्ति ब्रह्मा के अंगूठे से हुई और ये पुलस्त्य के वंशज और कश्यप के पुत्र हैं| ऐसी कथा होने के बाद भी इनका जीवन समाज में स्त्री- पुरुष की तरह सामान्य नहीं हो पाया है| इन्हें समाज कई नामों से पुकारता है जिनमें हिजड़ा, किन्नर, छक्का, पवैया, नपुंसकलिंग आदि प्रमुख हैं| साहित्य के क्षेत्र में इन्हें सम्मान के साथ इनके लिए किन्नर शब्द का प्रयोग किया जाता है| प्राचीन समय के ऐसे कई उदाहरण हमारे सामने हैं जो किन्नर की उपस्थिति को और समाज में उनके स्वीकार को दर्शाता है| शिखण्डी और अर्जुन के बृहन्नला रूप जैसे कई गौण पात्र को उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है| समाज में इनका जिक्र हमेशा से

गौण रूप में किया गया है ये कभी भी मुख्य धारा का हिस्सा नहीं बने| आज भी तमाम मानवाधिकारों के प्राप्त होने के बावजूद इनको मुख्य धारा का हिस्सा नहीं माना जाता है| समाज का एक बड़ा तबका आज भी इन्हें सम्मान की नजरों से नहीं देखता|

प्रेमचंद लिखते हैं साहित्य मशाल की तरह है| जो समाज को रास्ता दिखाता है| साहित्य हमेशा उन विषयों को उभरता है जो समाज में दबाये जा चुके हैं या जिन्हें पीछे ढकेला जाता रहा हो| थर्ड जेंडर भी एक ऐसा ही विषय है साहित्य के लिए जिसके बारे में मुखर होकर लिखना लेखकों की प्रथम प्राथमिकता रही| आज किन्नर जीवन पर ऐसे कई उपन्यास लिखे जा चुके हैं जो उनकी समस्याओं को बारीकी से उभारता है| कुछ प्रमुख लेखकों के द्वारा लिखे गए उपन्यास में महेंद्र भीष्म का 'मैं पायल', प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी का 'मैं हिजड़ा, मैं लक्ष्मी', निर्मला भुराडिया का 'गुलाम मंडी', नीरजा माधव का 'यमदीप' और चित्रा मुद्गल का 'नाला सोपारा' इस विषय की गहराई को अपने लेखन का माध्यम बनाया है|

आज हमारा समाज उस समय का साक्षी है जिस समय में हम अस्मिता से जुड़े हर तरह के पहलू को लेकर सक्रिय रूप से कार्यरत है| आज का समाज उन तमाम वंचित और हासिये के लोगों के अधिकार की मांग को लेकर पहले से ज्यादा सजग हो गया है| अतः इस तरह की सचेतना समाज को अंदर से स्वस्थ बनाती है| थर्ड जेंडर अर्थात् तृतीय लिंग के अंतर्गत आने वाला किन्नर समुदाय भी आज अपने अधिकारों और अस्मिता के लिए आवाज उठाता नजर आ रहा है| 15 अप्रैल 2014 को धारा 377 के तहत तृतीय लिंग के समुदाय के साथ सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से समान व्यवहार करने और आरक्षण देने का आदेश इस समुदाय के लिए बंद रास्तों को खोलने का काम किया| यह नहीं कहा जा सकता है कि इस तरह के अधिकारों ने समाज को पूरी तरह से बदल कर रख दिया है, लेकिन इस छोटे से प्रयास ने समाज पर जमी धूल की उपरी सतह को जरूर साफ किया है| आज के समय में ऐसे कुछ उदाहरण जरूर देखने को मिल जाते हैं जो समाज

में अपनी बराबरी की पहचान बना चुके हैं| आये दिनों में अब जरुरत है इस समुदाय का ससम्मान समाज में सामान्य रूप से औरों की तरह जीवन जीना|

साहित्य समय-समय पर उन तमाम विषयों को लेखन का हिस्सा बनाता रहा है जो कमतर, कमजोर, बेबस, और लाचार हैं| जिस प्रकार स्त्री एवं दलित विमर्श जैसे विषयों को साहित्य के माध्यम से लेखकों ने हमारे सामने उभारा वैसे ही रचनाकारों ने अपनी कलम से तृतीय समुदाय से संबंधित विषयों के यथार्थ रूप का भी वर्णन करते हुए नजर आते हैं| साहित्य अकादमी पुरस्कृत उपन्यास 'नाला सोपारा' भी इसी तरह के विषय पर लिखा गया उपन्यास है, जो समाज में तृतीय वर्ग के समुदाय की यथार्थ स्थिति को बयां करता है| उपर लिखित तमाम बातों को ध्यान में रखते हुए सभी उपन्यासों में वर्णित स्त्री जीवन से संबंधित विषय को उदाहरण सहित समझने का प्रयास किया जा रहा है|

4.2 परिवार में स्त्री

'स्त्रियाँ पैदा नहीं होती बनायी जाती हैं|' एक स्त्री सबसे पहले परिवार में स्त्री बनायी जाती है| परिवार सामाजिक संस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसमें जितना पुरुष का महत्त्व है उतना ही सामान रूप से स्त्री का भी| प्रभा खेतान लिखती हैं - "वह पूरी मानवता का आधा हिस्सा होते हुए भी पूरी एक जाति नहीं| गुलाम अपनी गुलामी से परिचित है और एक काला आदमी अपने रंग से, पर स्त्री घरों, अलग-अलग वर्गों एवं भिन्न-भिन्न जातियों में बिखरी हुई है|"[13] एक स्त्री का यथार्थ इससे भिन्न नहीं है| भारतीय समाज स्त्री को पति, पिता और पुत्र के अधीनस्थ देखने का आदि है, अतः स्त्री का जीवन पत्नीत्व और मातृत्व के बीच में फंसा हुआ है| स्त्री जीवन की सीमा पुरुषों के द्वारा बनाये गए चार दीवारों के बीच घिरा हुआ है| स्त्रियों को परिवार के दायरे में बांध कर रखने की प्रथा को लेकर गिडा लर्नर लिखते हैं कि - "पितृसत्ता की स्थापना का समय कोई एक घटना नहीं थी अपितु यह एक प्रक्रिया थी लगभग 2500 वर्षों (3100 ई.पू.- 600 ई.पू.) में संपन्न हुई|"[14] पुरुषों के वर्चस्व वाली सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों के श्रम, प्रजनन और लैंगिकता पर परिवार और समाज का अधिकार स्त्री को मानसिक स्तर पर धीरे-धीरे कमजोर करता गया, जिससे उनमें प्रतिकार की क्षमता कम होती चली गयी| 'स्त्रियों की पराधीनता' पुस्तक की भूमिका में कात्यायनी इसी सन्दर्भ में लिखती हैं कि - "वास्तविकता यह है कि विविध सामाजिक क्षेत्रों में स्त्रियों की रुचि और क्षमता को कभी परखा ही नहीं गया, पीढ़ी-दर-पीढ़ी घरेलू कामों के लिए ही उन्हें तैयार किया गया है और बाहरी क्षेत्रों में उनकी रुचि के विरुद्ध तमाम सामाजिक-सांस्कृतिक वर्जनाएँ आरोपित करके उनकी चेतना को अनुकूलित कर दिया गया है|"[15] 'जिंदगीनामा' में शाहनी, चाची मेहरी, राबया, 'कलिकथा वाया बाइपास' की कुंती, बिमला, जयंती, शांता, 'मिलजुल मन' की कनकलता, पार्वती, मोगरा, गुलमोहर, 'पारिजात' की रूही, अन्ना बुआ, रामदुलारी, प्रभा, 'नाला सोपारा' की वंदना बेन, सेजल, पूनम, बिमली ये सभी स्त्री पात्र सामाजिक यथार्थ के महत्त्वपूर्ण पक्ष की तरह उपन्यास में वर्णित हैं|

श्रम:

स्त्रियों के श्रम को लेकर कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता है, लेकिन फ्रांसीसी क्रांति के बाद एक उम्मीद जरूर जगी थी| श्रम को लेकर स्त्रियों का योगदान काफी पहले से ही रहा है लेकिन उन्हें घर संभालने और बच्चों की देख-रेख में उलझाया जाता रहा है| अभय कुमार दुबे लिखते हैं कि - "पूंजीवाद से पहले की कालावधियों में नारी के भीतर बिना किसी मुआवजे और छुट्टी के आजीवन और अहर्निश श्रम करने के लिए अभिशप्त थी| पुरुष ने उसे अपना वंश चलाने के लिए एक प्रजननकारी कोख में बदल दिया था|"[16] भूमंडलीकरण के समय में यह स्थिति कुछ हद तक तो बदली है भले ही उसे पारिश्रमिक पुरुषों की तुलना में कम मिलता हो| ई. बोसुरप ने सत्तर के दशक में यह निष्कर्ष निकाला था कि - "विकास प्रक्रिया में महिलाओं की आर्थिक भूमिका हर जगह मोटे तौर पर हाशिए पर ही रहती है| लेकिन नर-नारी संबंध उससे प्रभावित नहीं होते क्योंकि उनके पीछे समाज की परम्पराएं होती हैं"[17]

'जिंदगीनामा' उपन्यास में स्त्री पात्र पंजाब के डेरा जट्टा गाँव की है| ये सभी स्त्रियाँ घर से लेकर खेत तक काम करने वाली महिलाएं हैं| उपन्यास की कथा ठेठ ग्रामीण अंचल को लेकर लिखा गयी है जिसमें एक तरफ इन स्त्रियों की दुर्बलता को दिखाया है तो वहीं दूसरी तरफ उनके सबल पक्ष को भी| गाँव की सबल औरतें जितना घर में काम करती हैं उतना ही बाज़ार और खेत में भी| उपन्यास में सब्जी-वक्खर का ढेर लगाए बैठी अराइयों की कतार में हुकम बीबी, फ़तेह, नज़ाम बीबी गाँव की सबल स्त्री पात्र हैं, जो रोज अपने श्रम से पैसे कमाती हैं - "धर्मशाला के आगे अराइयों की कतार सब्जी-वक्खर का ढेर लगाए बैठी थी| 'आओ शाहनी, आओ!' 'इधर आने दे री जवाहरां, बोहनी करने दे| लो शाहनी, यह कनके की मूलियाँ !' हुकम बीबी ने सरसों का साग आगे किया : 'लो शाहनी, रुत का मेवा हरा करो !' फ़तेह ने काले भट्ट बैंगन आगे किए : 'शाहनी, पराहुनों के लिए ही ले जाओ !"[18] भारतीय समाज में स्त्री का सुबह उठते ही घर के कामों में लग जाना पारिश्रमिक के अंतर्गत नहीं आता है| घर का काम स्त्रियों के जिम्मे उनके पैदा होने के साथ

ही जुड़ जाता है| शुरू से ही समाज में पुरुष घर के लिए आवश्यक सामग्रियों को इकठ्ठा करता जैसे शिकार के लिए औजार बनाना कच्ची सामग्री उपलब्ध कराना| स्त्रियाँ घर की देखभाल करती, भोजन पकाती, पहनावा-ओढ़ावा से लेकर बच्चों की देखभाल तक सारा काम संभालती| समाज में समय के साथ बहुत सी चीजों में बदलाव तो आया लेकिन घर और बच्चों को संभालने की जिम्मेदारी आज भी स्त्रियों के ही जिम्मे है| शाहनी सुबह उठने के साथ ही घर के कामों में लग जाती हैं| शाहनी का दिन ईश्वर की आराधना के साथ शुरू होता है और रात सबको खाना खिलाने तक चलता है| घर के हर छोटे-बड़े काम शाहनी की दिनचर्या में शामिल है| घर से लेकर गाँव तक के लोगों खासकर स्त्रियों की और मवेशियों की देखभाल शाहनी बच्चों की तरह करती है, सबका ध्यान रखना शाहनी के सरल और ममत्व भरे स्वभाव का प्रतीक है - "शाहनी चूल्हे-चौके लगी तो करतारो ने कांसी के बरतन नितारकर चौंकी पर लगा दिए| शाहनी ने दूधारने से उपले की आँच ली और दरलाटों पर उपले रख चूल्हा लहका दिया| दूध की कड़ाही ऊपर रखकर करतारो को चेताया- 'ध्यान रखना करतारो, दूध धुआंखा न जाए|' ....शाहनी ने परात बेसन की भर दी| घी का मोन दिया| चुटकी-भर नमक और अजवायन|"[19] शाहनी का मवेशियों से प्रेम ऐसा है जैसे कि वे भी इंसान हैं| उनसे बातें करना उनको दुलारना और उनका ख्याल ऐसे रखना जैसे वे उनके बच्चे हों - "शाहनी ने नित की तरह तबेले की ओर झाँका| आले में जलते दीवटे की लौ| तीनों घोड़े तैयार पर तैयार| दोनों चिट्टे शाहजादा और बादशाह चोकन्ने हो ऐसे शुंकारे ज्यों बादल शहबाज़| लाक्खा गुलखैर शाहनी को देख हिनहिनाने लगा| जैसे पूछता हो- क्यों शाहनी, दरिया तक जाना है ! न रे न ! शाहनी पुचकारकर आगे बढ़ी: .... नई ब्याई वीर-कुंडी भैंस ने शाहनी को देखा तो तिखूँटा छुड़ाने लगी| शाहनी ने थापडा दिया- 'बड़ी गुस्सील है री तू ! क्यों नवाब, इसका अफरावा कम हुआ? कल आम का अचार और अजवाइन डाल दिए थे इसके गत्तावे में ! शाहनी ने बच्छडे को सहलाया- मल्ला इसकी भी मश्क भरी है| आज इसे खट्टी लस्सी में तेल दो| कोई अड़ होगी तो छुड़क जाएगी|"[20] उपन्यास के अन्य सभी स्त्री पात्र मेहरी चाची, छोटी शाहनी बिन्द्रादयी, विधवा

ब्राह्मणी आदि सबका दिनचर्या लगभग एक जैसा है| इस तरह पीढ़ियों से चली आ रही परम्परा में स्त्रियों को अपने स्वतः के बारे में सोचने का कभी मौका ही नहीं मिला, जिन्हें वे अपना धर्म और दायित्व समझकर काम करती हैं उसमें उनकी अपनी इच्छाओं के हो रहे दमन का एहसास तक नहीं होता है| जॉन स्टुअर्ट मिल अपनी किताब 'स्त्रियों की पराधीनता' में लिखते हैं - "वास्तविकता यह है कि विविध सामाजिक क्षेत्रों में स्त्रियों की रूचि और क्षमता को कभी परखा ही नहीं गया.... स्त्रियाँ अपने मालिक से वफ़ादारी और सेवा का रिश्ता निभाते हुए भी अपने बारे में कभी नहीं खुलती|"[21]

'कलिकथा वाया बाइपास' की कुंती, बिमला, शांता, ये सभी घरेलू स्त्री हैं जिनका काम घर को संभालना है| ये सभी स्त्री पात्र घर की जिम्मेदारी को चली आ रही परंपरा के रूप में निभाती हुई नजर आती हैं| किसी तरह का प्रतिकार कामों को लेकर नहीं जाहिर करती| उपन्यास के केन्द्रीय पात्र किशोर बाबू की माँ, पत्नी और भाभी भी एक ऐसे ही परिवार का उदहारण हैं जो पारंपरिक क्रिया के अंतर्गत आता है| इसे घरेलू कार्य क्षेत्र के रूप में देखा गया है, जिसका कोई पारिश्रमिक नहीं होता| इस तरह के घरेलू कार्य को भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री के कर्तव्य से जोड़कर देखा गया है| वहीं पुरुष घर के लिए बहार से सामग्री जुटाकर परिवार को चलाता है| किशोर बाबू और उनके परिवार की स्त्रियाँ इसी पारंपरिक विभाजित श्रम का उदाहरण है - "एक चीनी काठ-मिस्त्री को पकड़कर उससे नयी डाइनिंग-टेबल और कुर्सियां बनवाई जा चुकी थीं| बूफे रखना होगा- आजकल वही चलन है| एक पुराना सेकेंड-हैंड सोफा खरीदकर उस पर नया कपड़ा लगवा दिया गया था, जो माँ के पास ही एक पुरानी कपड़े की गांठ में कभी का खरीदा हुआ रखा था| ...किशोर बाबू ने हर चीज को जहां तक संभव था उस समय की अपनी हैसियत के अनुसार- एक नयी शक्ल दे दी थी ...इसमें भाभी का सबसे बड़ा योगदान रहा था| खाने में तरह-तरह की नयी डिशें रखी गई थीं, जिन्हें बनाने में किशोर बाबू की पत्नी को महारत हासिल था|"[22]

उपन्यास में आजादी से पहले और बाद के सामाजिक परिवेश को दिखाया गया है, जिसमें स्त्री और पुरुष के कार्य क्षेत्र पुरानी जीवन शैली के आधार पर बटें हुए थे| पुरानी और आधुनिक जीवन शैली दोनों में स्त्रियों के श्रम को घरेलू कार्य क्षेत्र के अंतर्गत गैर भुगतान वाले श्रम के इर्द-गिर्द रखा है जो जीवन चलाने के लिए आवश्यक माना जाता रहा है|

'मिलजुल मन' उपन्यास में सभी स्त्री पात्र आधुनिक समय में सशक्त होती महिलाएं हैं| ये जितनी घर के अन्दर हैं उतनी ही बाहर भी| गैर-भुगतान वाले आर्थिक कार्य में यहाँ कुछ बदलाव जरूर दिखता है, लेकिन कुछ चीजों को बदलने के लिए काफी वक्त लगता है| इस उपन्यास में स्त्री पात्र को देखकर इतना समझ आता है कि वो पुरानी मान्यताओं को लेकर अब दबायी नहीं जा सकती परन्तु उनका कुछ स्वतंत्र निर्णय पुरानी परंपरा की तरफ झुकाव को रेखांकित जरूर करता है| एक तरफ उनकी आजादी इतनी है कि वो अपने जीवन से जुड़े हर फैसले लेने के लिए स्वतंत्र है लेकिन कुछ चीजों को लेकर समाज और परिवार अभी भी उस स्तर पर प्रगतिशील नहीं हुआ है| उपन्यास की कनकलता, मोगरा और गुलमोहर जितनी स्वतंत्र दिखती हैं दरअसल उतनी हैं नहीं| लेकिन पहले के समय से उनकी तुलना करके अगर देखा जाए तो उनकी सबलता का अंदाजा लगाया जा सकता है| यहाँ भी घर के कामों को स्त्रियाँ ही देखतीं हैं और घर का रसोइया रामदेब एक उदाहरण भर है| ऐसा बिलकुल भी नहीं है कि पुरुष आज के दौर में घर का काम रसोई और बच्चे संभालने लगे हैं| यहाँ एक चीज और ध्यान देने योग्य है कि रामदेब को उसके खाना पकाने के लिए पैसे दिए जाते हैं| अर्थात् आज भी स्त्री-पुरुष के श्रम में काफी अंतर को देखा जा सकता है - "बेसाज़ोसामान बढ़िया खाना बनाने में ग़रीब परिवार की सब औरतें माहिर होती हैं| पर मर्द खाना तब बनाते हैं, जब बाकायदा खानसामा हों, यानी कोई रईस मालिक, सामान जुटा कर दे| बिन जाने रामदेब जानता था कि अब जाकर वह गृहस्थन हुआ था| इस मामले में अपने यहां मिर्च बड़े काम की चीज़ है| .... कनकलता से राज़दारी का एक मोर्चा, रामदेब और पारबती ने संभाल रखा था तो दूसरा ख़ुद बैजनाथ ने|"[23]

कनकलता का जीवन सामान्य स्त्रियों से थोड़ा अलग जरूर नजर आता है लेकिन वहीं उनकी दोनों बेटियां आधुनिक दौर की शिक्षित और सशक्त स्त्री होने के बावजूद घर के कामों का जिम्मा उनके ही कंधों पर था| आज के नए दौर में जहाँ एक तरफ स्त्रियाँ घर के बाहर अर्थ प्राप्ति के लिए कम करती तो हैं लेकिन घर के अन्दर आज भी उन्हें बहुत कुछ संभालना पड़ता है| घर को संभालने की जिम्मेदारी आज भी बहुत हद तक स्त्री के जिम्मे है - "महीने में एक बार बस्ती, पिकनिक पर जरूर जाती, उसी संयुक्त परिवारी अंदाज़ में| औरतें सुबह चार बजे उठ पूरी-छोले, झोलदार आलू भाजी या चोखा, चटनी, दही-सोंठ की पकौड़ी, खीर-हलवा वगैरह पकातीं| दरी, थाली-कटोरी-गिलास बटोर, करीने से टोकरियों में सामान पैक करतीं| पूरे सरंजाम के साथ बच्चों की रेल-पेल संभालती, दसेक मील पैदल चल, पिकनिक मक़ाम पहुँचती| मर्द हंसते-बतियाते, पान चबाते आगे-आगे चलते|"[24]

'पारिजात' उपन्यास की स्त्री पात्र प्रभा दत्त एक कॉलेज में पढ़ाती है, जिसके लिए उन्हें आर्थिक भुगतान मिलता है| इसके अतिरिक्त घर की अन्य जिम्मेदारीयों को भी उन्होंने संभाला है| उपन्यास में अन्य स्त्री पात्र फिरदौस, रूही, अन्ना बुआ, सरस्वती, जोहरा बी की कहानी भी कमोबेश एक जैसी ही है, ये सभी पात्र घर गृहस्थी को गैर-भुगतान के तहत संभालने का काम करती हैं| इन सबमें अन्ना बुआ को उनके श्रम के लिए आर्थिक भुगतान दिया जाता है| अन्ना बुआ पर ही रूही के घर की सारी जिम्मेदारी है, खाना पकाने से लेकर घर आये मेहमान की देखभाल तक घर के हर छोटे-बड़े काम को वो संभालती हैं - "रोहन बाबा, चाय लोगे या कॉफ़ी? कहते हुए अन्ना बुआ ने कमरे में फैले मलगिजे अँधेरे को स्विच दबा सफ़ेदी में बदल दिया|"[25]

'नाला सोपारा' की वंदना बेन और सेजल भाभी ये दो स्त्री पात्र एक ही परिवार से हैं| वंदना बेन गृहणी के तौर पर उपन्यास में दिखाई गयी हैं, जो घर संभालती हैं और अपने परिवार का ध्यान रखती हैं| वंदना बेन एक ही समय में एक अच्छी पत्नी, माँ और सास है| वहीं सेजल भाभी घर के बाहर काम करती हैं अर्थात् पुरुषों की तरह इनके श्रम के लिए इन्हें आर्थिक भुगतान मिलता

है| वंदना बेन जो एक पारिवारिक स्त्री हैं इन्हें इनके श्रम के लिए किसी तरह का पारिश्रमिक नहीं दिया जाता है|

अर्थ स्त्री के जीवन में स्वतंत्र सत्ता का आभास कराती है| स्त्री जन्म से लेकर जीवन के आखिरी समय तक किसी न किसी पर आश्रित रहती है, जिसका एक सबसे बड़ा कारण अर्थ है| प्राचीन समय में निम्नवर्गीय स्त्रियाँ अर्थोपार्जन के लिए घर से बाहर काम पर जाती रही हैं, खेतों और सड़कों पर ये अपने पति व बेटे के साथ काम करती रही हैं| लेकिन मध्यम वर्ग की स्त्रियों के लिए ये नयी बात थी कि वो घर की चारदीवारी से बाहर कदम रखकर अपने लिए काम कर पैसे कमाये| जिससे उनके अन्दर आत्मविश्वास बढ़े और सामाजिक एवं पारिवारिक शोषण से बच सके| सशक्त कहने से तात्पर्य सिर्फ स्त्रियों के किताबी ज्ञान से नहीं होता, अर्थात् व्यावहारिक पक्ष से अनुभवी होना भी स्त्री को सशक्त बनाता है| उपन्यास में ऐसे कई स्त्री पात्र हैं जिन्हें किताबी ज्ञान नहीं हैं, लेकिन उनके अनुभव ने उन्हें उस स्तर तक संपन्न किया हुआ है जितना एक शिक्षित स्त्री का ज्ञान| 'जिंदगीनामा' की मेहरी चाची और 'पारिजात' की अन्ना बुआ ऐसी ही सशक्त स्त्री पात्र हैं जिनके व्यावहारिक ज्ञान का कोई मुकाबला नहीं है|

प्रजनन:

औरत को परिभाषित करते हुए सीमोन लिखती हैं- "औरत? औरत एक गर्भ है, अंडाशय है और एक औरत है ये शब्द काफी हैं उसको परिभाषित करने के लिए|"[26] पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री पर जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों की पहरेदारी होती है| ऐसे में जब बात एक नए जीवन को जन्म देने की हो तो उस पर पुरुषों की पाबंदी न हो ऐसा हो नहीं सकता| स्त्री भले ही जीवन दायनी का रूप है लेकिन उस पर भी पहला अधिकार पुरुषों का ही है| ईश्वर के बाद यदि कोई जीवन दे सकता है तो वह है स्त्री| ईश्वर जो कि प्रतीकात्मक रूप से ही ऐसा कर सकते हैं वहीं स्त्री भौतिक रूप से एक जीवन देती है| आज भी हमारा समाज स्त्री को जननी तो मानता है

लेकिन उनके प्रजनन पर काफी हद तक पुरुष वर्ग का पहरा लगा हुआ है| यह सामाजिक संरचना ऐसी है कि इससे चाह कर भी स्त्री निकल नहीं सकती|

पुरस्कृत उपन्यासों में स्त्री के ऐसे कई रूप की चर्चा की गई है, जिसमें उसके सबल और निर्बल पक्ष को हर तरह से रेखांकित किया गया है| वैसे ही स्त्री के मातृत्व रूप को भी सभी उपन्यास में प्रमुखता से दिखाने का प्रयास किया गया है| उपन्यास में सिर्फ माँ बनने भर की कहानी लेखिका नहीं करती हैं, बल्कि उसके आगे-पीछे की उससे जुड़ी उन तमाम घटनाओं के यथार्थ रूप को भी रेखांकित किया है| शाहनी, रूही, सेजल, सरस्वती, मोगरा, गुलमोहर ये सभी स्त्री पात्र में एक चीज सामान्य है वो है इनका मातृत्व भाव| इन सभी पात्रों में जितना उनके ममत्व रूप को दिखाया है उतना ही एक स्त्री के जीवन में उसके मातृत्व भाव से जुड़ी समस्याओं को भी दिखाया है|

शाहनी 'जिंदगीनामा' की एक प्रमुख पात्र है| इनके जीवन में वो तमाम सुख सुविधाएँ हैं जो एक साधारण स्त्री के जीवन को पूर्ण करता है| इतना सबकुछ होने के बाद भी शाहनी अन्दर से खुश नहीं है उसे रह-रह कर अधूरेपन का अहसाह सताता है| शाहनी का कोई बच्चा नहीं होना उसे कई तरह की ग्रंथि से घेरे हुए है| कोई भी स्त्री खुद को पूर्ण तभी मानती है जब वो जीवन में एक बार माता बनने का सुख पाती है| शाहनी एक बच्चे के लिए वो सारे प्रयास करती है जो एक साधारण स्त्री कर सकती है| शाहनी के माध्यम से उपन्यास में स्त्री के अधूरेपन की समस्या को दर्शाया गया है - "इस घर रब्ब का दिया बहुत-कुछ है, पर मैं ही इम्तहान में खरी नहीं उतरी|"[27] आज भी समाज में स्त्री के माँ न बन पाने के लिए दोषी स्त्री को ही ठहराया जाता है| शाहनी का अथक प्रयास इस बात की ओर इशारा करता है कि कहीं वो इस पाप की भागी न बन जाये कि उसने शाह के परिवार को उनका एक वारिस न दे सकी| उपन्यास में ग्रामीण समाज की संरचना में स्त्रियों के आपसी संबंध की बारीकी को समझा जा सकता है| गाँव के परिवेश में रह रही स्त्रियों का एक दूसरे के साथ आत्मीय भाव देखते ही बनता है| चाची मेहरी जानती है कि बच्चे का सुख

एक स्त्री के जीवन में कितना महत्त्व रखता है, इसलिए वो जब भी शाहनी से मिलती है उसे आशीर्वाद में बच्चे की दुआ ही देती है - "चाची मेहरी ने शाहनी के कन्धे पर हाथ रखा- बच्ची, कुछ ऐसा भासता है इस पल कि घर में त्रिंजन से पहले ही लाल तेरा तद्दरों में खेलता हो|"[28]

हैमिल्टन साहब का जन्म एक ऐसे प्रजनन की कहानी है जो समाज को स्वीकार नहीं है| इनकी माँ जयंती यूरोपियन लड़की थीं और पिता यूरेशियन (एंग्लो-इंडियन)| यूरोपियन लोग यूरेशियन से शादी नहीं करना चाहते थे| आखिर में सामाजिक दबाब के कारण हैमिल्टन को इंग्लैंड वाली माँ को सौप दिया जाता है| समाज में स्त्री को प्रजनन का अधिकार एक दायरे भर ही प्राप्त है| जयंती माँ तो बनती है लेकिन अपने भर के लिए, समाज में उसका बच्चा किसी और के बच्चे के रूप जाना गया| उपन्यास में कुछ और ऐसे प्रसंग हैं जिनके माध्यम से प्रजनन की एक दूसरी तस्वीर उभरती है जिसमें परिवार के मुताबिक स्त्री बच्चा पैदा करती है| अमोलक के एक रिश्ते के चाचा और चाची के माध्यम से बच्चे और माँ के जीवन की दु:खद स्थिति को देखा जा सकता है| यहाँ प्रजनन और पति-पत्नी के बीच के संबंध को समझा जा सकता है| किस तरह परिवार में एक स्त्री सिर्फ बच्चे पैदा करने की मशीन भर है - "नियत समय पर उन्हें लेने के लिए एक घोड़े की फिटन आती है, जिसमें वे अपनी महबूबा को बहुबाजार से लेकर रात को विक्टोरिया-चौरंगी घुमाते हैं| उधर चाची के हर साल एक बच्चा हो जाता है, इसलिए वे या तो गर्भवती रहती हैं या जापे (जचगी) में|"[29]

'मिलजुल मन' उपन्यास में गुलमोहर और मोगरा के माँ बनने के प्रसंग को दिखाया गया है| शादी के तुरंत बाद ही माँ बन जाने और उससे उत्पन्न कोमप्लिकेसन गुलमोहर के जीवन में एक बड़ी समस्या के रूप में सामने आता है| इससे इतना स्पष्ट होता है कि आधुनिक दौर में होने के बावजूद जानकारी की कमी स्त्री को सही समय पर सही निर्णय न ले पाने से उन्हें कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है| जहाँ एक तरफ गुल असमय माँ बन कर कई तरह की शारीरिक समस्याओं से जूझती है वहीं परिवार के लोगों का कटाक्ष ख़त्म होने का नाम ही नहीं

लेता वे अब शक के तौर पर देखे जाने लगे - "उसकी दबंग ननदें आपस में कहती सुनाई देती रहीं, अभी से ! पेट में इतना उभार अभी से ! वज़न में इतनी बढ़त अभी से ! पैरों में सोजिश, अभी से ! ....उस 'अभी से' में एक ज़्यादा मानीखेज 'अभी से' छिपा था, जो सब समझते थे|"[30]

'पारिजात' उपन्यास में रूही और एलेसन उच्च शिक्षा प्राप्त आधुनिक समय की स्त्री है| दोनों ने अपना जीवन साथी स्वयं चुना हैं और जीवन से जुड़े सभी निर्णय भी स्वयं लेती हैं| ऐसे में जब प्रजनन की बात आती है तो दोनों के सोच में काफी अंतर देखा जाता है| एलेसन जिसके लिए शादी महज एक छलावा था जिसमें वो ज्यादा समय नहीं रहना चाहती थी जिस कारण वो अपने बच्चे को जल्द से जल्द जन्म दे देना चाहती थी| टेसू जब एलेसन की गर्भ में था तब वह डॉक्टर से सलाह लेती है कि यदि बच्चा पुष्ट हो गया हो तो उसे जल्द ही बाहर निकाल देना चाहिए बेकार में ढ़ोने का क्या मतलब| दूसरी तरफ रूही भी माँ बनना चाहती है, काजिम के मौत के बाद रूही के मन में एक ही इच्छा रहती है कि वो माँ बन सके| आखिर में रोहन से विवाह करने के बाद रूही अपनी इस अधूरी इच्छा को उसके सामने रखती है - "तुम्हारे बेटे की वह तस्वीर मेरे अरमानों को जगा गई| मैं माँ बनना चाहती थी| एक ऐसी प्यास पाल बैठी जो काज़िम के न होने के एहसाह को बढ़ावा दे रही थी और उन्हीं दिनों जाने कैसे पिघली बर्फ़ के नीचे से एक गर्म सोता फूटा जो तुम्हारे प्यार का था|"[31]

अतः उपरलिखित सभी प्रसंगों से प्रजनन को लेकर यह बात स्पष्ट होती है कि स्त्रियाँ आज भी अपने गर्भ को लेकर समाज और परिवार पर ही निर्भर है|

लैंगिकता:

पितृसत्तात्मक समाज में लैंगिकता के दोहरे मापदंड को देखा जा सकता हैं| इस सामाजिक व्यवस्था में पुरुष को छोड़ कर अन्य सभी जेंडर पर कई तरह की पाबंदियां हैं| ऐसे में स्त्रियों पर कई तरह के अंकुश इसी बात का प्रमाण है| अशोक झा लिखते हैं कि - "यदि कुछ अपवादों को छोड़ दिया

जाये तो पुरुष और स्त्री का संबंध अपने सभी आयामों में श्रेष्ठता और हीनता के समीकरण द्वारा परिभाषित होता है| प्रागैतिहासिक काल से ही पुरुषों की श्रेष्ठता के प्रमाण सामने लाये जाते रहे हैं| ...पुरुषों ने हर तरह से अपनी श्रेष्ठता को स्थापित किया और स्त्रियों की सभी खूबियों को उनकी पराधीनता के कारणों में तब्दील कर दिया|"[32] स्त्रियों के जीवन पर समाज में कई तरह के पहरे लगे हैं उसे किसके साथ और कैसा जीवन जीना है, हँसने, बोलने से लेकर उसके यौन संबंध सब पर अंकुश लगा हुआ है| अतः स्त्री का अपने ही शरीर पर भी कोई अधिकार नहीं है|

'जिंदगीनामा' उपन्यास में पुत्र की महत्ता को कई बार रेखांकित किया गया है| किसी भी स्त्री के लिए उसका बच्चा बहुत मायने रखता है चाहे वो पुत्री हो या पुत्र लेकिन पितृसत्तात्मक समाज में पुत्र की अहमित बहुत ज्यादा है| पूरे उपन्यास में जितनी बार भी बच्चे की कामना का प्रसंग लिखा गया है उसमें सिर्फ पुत्र प्राप्ति की बात कही गयी है| इस व्यवस्था में जितना पुरुष दोषी है उतनी ही स्त्री भी| इस संरचना में पुरुष के साथ-साथ स्त्री की भी सहभागिता उतनी ही है - "फिर चाची को सलाम किया| 'साईं जीवे, रब्ब पुत्तर दे !' .....चाची महरी की नज़रें हाकमा के लाचे के इर्द-गिर्द टिकी रहीं| फिर हौले से पूछा- क्यों धियाँ, आठवां कि नौवाँ?" ...चल तेरे पुत्तर जन्मने से पहले ही मुहँ मीठा कर लेते हैं|"[33] पुरुष प्रधान समाज में एक स्त्री के जीवन में पुत्र के स्थान को लेकर लिखा गया है- "रात रोटी-टुक्कर के बाद चाची मंजी पर लेटी तो बड़े दर्द-भरे सुर में गाने लगी : अरी पुत्र न मिलते माँगवें

न वे हाट बिकें

जो वे मिलते माँगवें

मैं लेती दम्मी तोल !"[34]

समाज और परिवार में पुत्र की महत्ता सबसे ज्यादा है| किसी भी स्त्री के लिए ये गर्व की बात होती है कि वो बेटे की माँ है| आगे की पंक्ति से समाज में पुत्र के स्थान को साफ तौर पर समझा जा सकता है- "रंग रस जीनेवालों के

रे साजन प्रीत प्यारों के

जिनके ह्रदय सूरज

उनकी मुट्ठी धूप

मस्तक उनके चन्द्रमा

जिनके घर में पूत|"[35]

इस तरह जो स्त्री बार-बार पुत्री को जन्म देती है उसे समाज और परिवार में अपमान झेलना पड़ता है उसे दुत्कारा जाता है, लेकिन वहीं जब कोई स्त्री पुत्र को जन्म देती है तो उसे सम्मान और प्यार दिया जाता है| अतः माँ के ममत्व पर भी पुत्र का अधिकार ज्यादा है|

समाज में जब कोई स्त्री पति के मरणोपरांत आजीवन अकेले रहने का निर्णय लेती है तो इसकी दो वजह हो सकती है एक तो उसका अपने पति के प्रति एकनिष्ठ प्रेम तथा दूसरा सामाजिक और धार्मिक बंधन| लेकिन जब कोई स्त्री अपने पति के मरने के बाद दूसरी शादी करती है तो उसे समाज और परिवार से बहिस्कृत कर दिया जाता है| पुरुष वर्चस्व वाले समाज में स्त्रियों को अपने यौन संबंध से जुड़ा कोई निर्णय लेने का अधिकार नहीं है| समाज में ऐसी स्त्रियों को स्वीकार नहीं किया जाता है| 'जिंदगीनामा' उपन्यास में चाची महरी इसी तरह की व्यवस्था का उदहारण प्रस्तुत करती है|

'कलिकथा वाया बाइपास' में आजादी से पहले और आजादी के बाद स्त्रियों की स्थिति को दिखाया गया है| स्त्रियों का घर से बाहर निकलना, काम करना अपने तौर तरीके से जीवन जीने

की छूट नहीं के बराबर थी| अपने घर के पुरुषों के अलावा बाहर के किसी भी पुरुष के संपर्क में आना वर्जित था| समाज में स्त्री-पुरुष के बीच के भेदभाव को कई स्तरों पर देखा गया है, जिसमें एक हकीकत घर की चारदीवारी में बंद रहना है| किशोर घर में बंद रहने वाली स्त्रियों को देखकर उनके जीवन के बारे में कहता है कि - "कैसी जिंदगी है हमारे घरों में औरतों की| ....सारे दिन घर में बंद रहती हैं| कभी बाहर निकलना हुआ, तो जरीदार भारी ओढ़नी ओढ़कर| गरदन तक घूंघट डालकर| अमोलक कहता है कि हाथरस में उनके ननिहाल में मकानों की छतें एक दूसरे से सटी हुई हैं| वहां औरतों को एक-दूसरे के घर जाने के लिए ओढ़नी नहीं लेनी पड़ती - वे छत-ही-छत से दूर तक कई-कई घरों में आ-जा सकती हैं| उनकी छतें ही उनके लिए सड़कें हैं| उन्हें नीचे की दुकान से कोई सामान मंगवाना होता है तो वे ऊपर एक तल्ले से साड़ी लटकाकर नीचे दुकानदार को आवाज दे देती हैं| ....महीनों-महीनों तक औरतें घर के बाहर सड़क पर कदम नहीं रखतीं|"[36] इस तरह एक स्त्री जो पूरे परिवार को प्रेम, दया एवं सहनशीलता से बांधे रखती है, घर की मर्यादा और सुख शांति का पूरा ध्यान रखती है क्या उसके साथ ऐसा बर्ताव, पिंजरे में बांध कर रखने का प्रयास सही है| परिवार में स्त्रियों पर कई तरह के पहरे होते हैं एक पहरा उनके श्रृंगार करने, सजने-संवरने पर भी लगा होता है| समाज में ऐसी स्त्रियों को बहुबाजारवाली के तौर पर जाना जाता है अर्थात् नाचने गाने वाली स्त्री| इस तरह के काम करने वाली स्त्रियों को भली औरतों की श्रेणी में नहीं रखा जाता| भली स्त्री यानि कि जो घर के बाहर न जाए शाम के बाद श्रृंगार न करे, पराये मर्दों से बात न करे आदि| उपन्यास में मदन की ताई शाम होते ही घर के सारे शीशों पर पर्दा लगवा देती हैं| शाम के बाद वे स्त्रियाँ सजती हैं जो बहुबाजार में काम करती है| सभ्य औरतों को यह बिलकुल भी शोभा नहीं देता कि शाम के बाद शीशे के सामने आए - "वे कहती हैं कि शाम के बाद भली औरतों को शीशे में अपना चेहरा नहीं देखना चाहिए| शाम को कैसा सिंगार? शाम को तो 'कसबिनें' सिंगार करती हैं|"[37]

किशोर बाबू जहाँ एक तरफ आधुनिक समय में प्रवेश करते हुए खुद को प्रगतिशील समझते हैं दरअसल वो एक दायरे भर में ही होकर रह जाते हैं| उनकी आधी प्रगतिशीलता कभी बेटी पर तो कभी अपनी भाभी पर जाहिर होती रहती है| किशोर बाबू की छोटी बेटी उनसे हर रोज किसी-न-किसी बात पर असहमति जताती रहती है| और अपनी माँ के चुप रहने पर सवाल करती है कि वो इतना चुप क्यों रहती हैं| उसकी माँ की हर बात पर सहमति उसे खटकती है| फिर स्वतः ही समझ भी जाती है कि इसकी वजह क्या है - "तुम सबकी बातें क्यों सहती हो? लेकिन फिर माँ के चेहरे पर आए असुविधा भरे भाव को देखकर उसने जान लिया कि अब माँ इतनी दूर आ चुकी है कि उसकी खुद की मर्जी से उसका परिचय तक खत्म हो गया है|"[38] स्त्रियों के जीवन में इस तरह स्थिति एक लम्बी प्रक्रिया है जो पीढ़ियों से चला आ रहा है| यहाँ गलत इतनी बार दुहराया गया है कि वो अब सही रूप माना जाने लगा है| इसी प्रक्रिया पर किशोर बाबू की छोटी बेटी बार-बार प्रश्न करती है| वो यहीं नहीं रूकती घर की सभी बड़ी औरतों से सवाल पर सवाल पूछती रहती है - "बड़ी माँ, तुम बताओ कि पापा इस तरह क्यों सोचते हैं लड़कियों के बारे में? हम क्यों नहीं खेल सकते बगल के मकान की लड़कियों से? हम क्यों नहीं खड़े हो सकते बरामदे में? हम क्यों नहीं जा सकते अपनी सहेलियों के घर? हम क्यों कैद हैं पिंजरे में बंद चिड़ियों की तरह?" ....दादी, तुमने क्यों बनने दिया पापा को ऐसा? ऐसा लगता है जैसे हम किसी मिलिट्री रुल में रह रहे हों| उनकी ही मर्जी से हम सोयें, जागें, पढ़ें, हंसें और कभी जिद न करें- कभी न रोएं| ऐसा क्यों है?"[39] दरअसल ये सारे प्रश्न पूरे समाज से है जो स्त्रियों को कैद कि जिंदगी बिताने के लिए मजबूर किया हुआ है| स्त्रियों को दबाने के लिए बनाए गए सभी नियम अब उन्हें खुद बदलना होगा| संस्कृति के नाम पर हो रहे अत्याचार भी इसी तरह की मानसिकता को दर्शाता है| दरअसल परंपरा और सभ्यता के नाम पर सिर्फ स्त्रियों को बेवकूफ ही बनाया गया है| सभ्यता और संस्कृति के बीच पिसती स्त्री का जीवन परिवार में महज गुलाम से कम नहीं है| उपन्यास में शांता भाभी के माध्यम से दर्शाए गए प्रसंग इसी सन्दर्भ को व्यक्त करता है - "तुम्हारा दिमाग क्या अब एकदम

ही खराब हो गया है भाभी? उम्र बढ़ने के साथ-साथ आदमी की अक्ल बढ़ती है, पर मुझे लगता है यू.पी. (उत्तर प्रदेश) वालों की अक्ल कम होने लगती है| यह क्या इतने चटक-मटक रंग की साड़ी पहनी है| क्या कहेंगे लोग देखकर| कुछ तो मर्यादा रखी होती समाज में|"[40] पितृसत्तात्मक समाज में मर्यादा का सारा जिम्मा स्त्रियों ने ही उठा रखा है| ऐसे में जब भी कोई स्त्री नियम से अलग जाती है तो उस पर पहला हमला परिवार की तरफ से ही किया जाता है| वैसे तो समाज में स्त्रियों के जीवन में सुख के पल बहुत कम ही होते हैं, लेकिन जब कोई विधवा स्त्री खुश दिख जाए तो यह समाज को स्वीकार नहीं है| पति के मरने के बाद स्त्री को खुश रहने का हक़ समाज नहीं देता| दरअसल यहाँ पति नहीं बल्कि एक पुरुष के मरने के बाद किसी स्त्री के खुश होने का प्रश्न ज्यादा है|

लैंगिक असामनता की जब हम बात करते हैं तो उसका सबसे दु:खद पहलू पुत्र-पुत्री के जन्म के समय का होता है| स्त्रियों का परिवार में सम्मान इस बात पर निर्भर करता है कि वो पुत्र को जन्म दी है या पुत्री को| पारिजात उपन्यास में फात्मा एक ऐसी ही माँ है जिसका जीवन उसके जन्म लेने वाले बच्चे पर निर्भर है| फात्मा के ससुराल वाले उसे उसके ख़राब हालत में मायके इसलिए छोड़ जाते हैं ताकि लड़की हुई तो इसे वापस नहीं ले जायेंगे| परिवार में ऐसी क्रूर स्थिति का शिकार अक्सर स्त्रियाँ होती रहती हैं| 'पारिजात' की फात्मा इसी का उदहारण है - "निगोड़ी ज़च्चा के बदन में खून बचा कहाँ था| हालत जब लौंडिया की ख़राब हुई तो ससुराल वाले मायके छोड़ गए| लड़की हुई तो वापस नहीं ले जाएँगे और लड़का हुआ तो सब बदल जाएगा| यही लौंडिया सर-आँखों पर दादी के पोते को लेकर ससुराल बुलाई जाएगी|"[41]

'नाला सोपारा' उपन्यास लैंगिक विषमता में थर्ड जेंडर के पक्ष को लेकर लिखा गया है| उपन्यास लिंग से इतर इंसानियत की बात करता है| बिनोद उर्फ़ बिमली के द्वारा अपनी बा को किये गए प्रश्न दरअसल पूरे समाज से प्रश्न है| बिनोद बार-बार लैंगिक भिन्नता से उत्पन्न समाज की अमानवीय तस्वीर को सामने रखता है| किन्नर समुदाय के प्रति समाज का क्रूर रवैया पितृसत्ता

की ही देन है| पुरुष वर्चस्व वाले समाज में सिर्फ महिलाए ही नहीं दबाई गयी हैं, बल्कि जो भी पौरुष की श्रेणी से बाहर है वे सभी इस व्यवस्था की दुर्दशा के शिकार हुए हैं| स्त्रियाँ तो फिर भी घर में रखकर शोषित होती हैं, लेकिन एक किन्नर के जीवन पर किया गया पहला घात उसे अपने ही परिवार अपने ही घर से निकाल कर किया जाता है| बिनोद ऐसी ही दुर्दशा का जब शिकार होता है तो वो अपनी माँ को उसके ऊपर हुए इस अन्याय के लिए बार-बार प्रश्न करता है, ऐसा क्यों हुआ - "मेरी सुरक्षा के लिए कोई कानूनी करवाई क्यों नहीं की? ....क्यों वह अनर्थ हो जाने दिया तूने जिसके लिए मैं दोषी नहीं था ! पढ़ने में अपनी कक्षा में सदैव अव्वल आने वाला | ...मैं अव्वल नहीं आता, तब भी क्या सामान्य लोगों की तरह जीवन जीने का अधिकार न होता मेरा? जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अन्धा कुआँ है जिसमें सिर्फ सांप-बिच्छू रहते हैं| सांप-बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे| बस, इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया|"[42]

4.3 हिंसा में स्त्री

इतिहास से लेकर वर्त्तमान तक में ऐसे सैंकड़ों उदाहरण हैं जो स्त्री की गुलामी का प्रमाण प्रस्तुत करता है| ये गुलामी कई तरह की है, कभी वो मानसिक रूप से तो कभी आर्थिक रूप से तो कभी शारीरिक रूप से पुरुषों के अधीन रही है| ऐसे में जब समाज का एक वर्ग हर तरह से गुलाम हो तो उसकी स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है| अतः इस तरह की व्यवस्था में स्त्री को चोट पहुँचाने के लिए उसका शरीर पुरुष वर्ग के लिए सबसे आसान और सुलभ तौर पर उपलब्ध हो जाता है| समाज में ऐसे कई उदाहरण व्याप्त हैं जो स्त्री शरीर को पशु की तरह देखता है| दोनों विश्वयुद्ध हों या कोई भी सांप्रदायिक या जातिगत हिंसा उसमें स्त्री के शारीर को पहला निशाना बनाया गया| स्त्री देह का जानवरों की तरह व्यवहार किया जाना सामाजिक विकृति की निशानी है| किसी भी समाज में हिंसा उसकी पशुता की पहचान कराता है| आज तक के इतिहास में कभी भी हिंसक घटना को सराहा नहीं गया| जब ऐसी किसी भी हिंसा में स्त्री का पशु की तरह व्यवहार किया गया हो तब वह अमानवीयता की पराकाष्ठा को पार कर जाता है| ऐसी स्थिति समाज और परिवार में आये दिनों देखा सुना जाता रहा है| घरेलू हिंसा से लेकर युद्ध भूमि तक स्त्री सिर्फ वस्तु होती है|

स्त्रियों के जीवन में उनके शरीर से जुड़ी क्रूरतम घटनाएँ जैसे बलात्कार, यौन हिंसा, घरेलू हिंसा समाज को समय से काफी पीछे ले जाता है| ऐसी ही कई घटनाएँ दुनियाभर में घटी हैं जिसमें स्त्री देह का इस्तेमाल वस्तु की तरह किया गया| ऐसी हिंसा हमारे समाज की लैंगिक असामनता को दर्शाता है| परिवार में इस तरह की हिंसा स्त्री के पत्नी में ज्यादा देखा जाता है| ऐसे समाज में पति के द्वारा मार खायी हुई स्त्रियाँ या तो इसका विरोध करती हैं या फिर इसे ऊपर वाले की नियति समझ कर सहती रहती हैं| 'जिंदगीनामा' उपन्यास की स्त्रियाँ ग्रामीण परिवेश की जरूर हैं, लेकिन निर्बल या कमजोर बिलकुल नहीं| 'रसूली' इस उपन्यास की ऐसी पात्र है जो अपने पति से मार खाने के बाद भी उसके साथ प्रेम भाव से रहती है| समाज में आज भी स्त्रियों

को कई स्तर पर शिक्षित करने की जरुरत है, खासकर ग्रामीण स्त्रियों को| चली आ रही परंपरा में विरोध का स्वभाव काफी अलग है, इसमें वे इस तरह की हिंसा का विरोध तो करती है लेकिन यह कानूनी तौर-तरीके से अलग होता है, जिसमें समझौता का स्वर प्रमुख होता है| रसूली का गुस्सा क्षण भर रहकर ही क्यों रह जाता है| ऐसा इसलिए भी होता है कि ग्रामीण परिवेश में क़ानूनी करवाई या और कोई दूसरा विकल्प स्त्रियों के पास नहीं होता है| आज भी गाँव के लोगों में इस तरह की हिंसा सामान्य है - "भरपाई बेगमा, यह सुनते ही घरवाले को तो हल्क कूद गया| घसीट मुझे नीचे दे मारा| मैं न रोई, न करलाई| कपड़े झाड़ उठ खड़ी हुई और सहजे से बोली - माँ-पुत्तर दोनों मिलकर कर लो बुटेमारी|"[43] हीरा और साँसी के एक और प्रसंग से घरेलू हिंसा के द्वारा यहाँ ग्रामीण परिवेश की स्त्रियों की स्थिति को समझा जा सकता है| गाँव के सामाजिक संरचना में स्त्री की स्थिति अलग होती है यहाँ ऐसी घटनाओं को घर के बाहर नहीं जाने दिया जाता है - "हीरा ने झट चेतावनी दी और जीवां के बाल पकड़ घर के अन्दर धकेलने लगा- कुत्तेखानी, मुंह पर लगा दूँगा माफरा !"[44]

घरेलू हिंसा को रोकने के लिए आधुनिक समाज में कानून बनाया गया है, जिससे स्त्रियों की सुरक्षा की जा सके| घरेलू हिंसा की चपेट में आने के कारणों को देखें तो आर्थिक परावलंबन एक बड़ा कारण माना गया है| इसके अतिरिक्त विरोध करने के भाव से भी ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है| घरेलू हिंसा को दो स्तरों पर रखकर देखा गया है, एक शारीरिक दूसरा मानसिक| शारीरिक हिंसा में मारना-पीटना, जबरन यौन संबंध बनाना, बलात्कार और छेड़खानी करना और इच्छा के विरुद्ध शादी आदि आता है| मानसिक या भावनात्मक उत्पीड़न में गाली देना, लोगों के सामने अपमानित करना एवं बच्चों को पितृत्व से वंचित करना आदि आता है|

'पारिजात' उपन्यास में रोहन और एलेसन आधुनिक दौर के पढ़े-लिखे जीवन साथी हैं| समाज की रूढ़िवादी सोच के सामने ये उदाहरण की तरह हैं| किसी भी दाम्पत्य में नोंक-झोंक होना सामान्य बात होती है लेकिन जब ये बहस लड़ाई का रूप लेकर न्यायालय पहुँच जाए तो इसे

हिंसात्मक व्यवहार की श्रेणी में रखा जाएगा| ऐसी ही घटना रोहन और एलेसन के बीच भी घटती है और दोनों कोर्ट का रुख अपनाते हैं| कानून स्त्री को लेकर ज्यादा संवेदनशील है उसमें भी बात जब एक विदेशी स्त्री की हो तो बात देश से जुड़ जाती है| यहाँ एलेसन ने रोहन के खिलाफ जो भी हथकंडे थे सारे अपना डाले| परिणाम यह हुआ कि रोहन को जेल हो गयी और बेटे की कस्टडी भी एलेसन को ही मिली| इस कहानी में जितनी सच्चाई रोहन और एलेसन के बीच हुए हाथापाई की है उतना ही रोहन से उसका बच्चा छिन्न जाने का दर्द भी है| अतः यहाँ दो तरह के उत्पीड़न को देखा जा सकता है, जिसमें पहला शारीरिक हिंसा का और दूसरा भावनात्मक हिंसा का उदाहरण प्रस्तुत करता है - "मैं शर्मिंदा भी हूँ और गहरे सदमें भी कि ऐसा क्या हो गया था जो एलेसन ने मुझे इतनी बड़ी सजा दे डाली| .....प्रार्थना करता हूँ कि उसके दिल में ऊपर वाला रहम डाले और चेतना जगाए कि औलाद किसी एक की नहीं, बल्कि माँ-बाप के साथ दो परिवारों की भी होती है|"[45]

'नाला सोपारा' उपन्यास किन्नर समाज की सच्चाई को लेकर लिखा गया है| पितृसत्तात्मक समाज में लैंगिक विषमता से उत्पन्न वीभत्स स्थिति के कई उदहारण समाज में मौजूद हैं| समाज में मानसिक प्रताड़ना और शारीरिक उत्पीड़न की एक लम्बी सूची है| किन्नर के प्रति समाज का नकारात्मक रुख किसी से भी छुपा नहीं है| उपन्यास में किन्नर के मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न दोनों की चर्चा की गई है| बिनोद जो अपने घर से निकाले जाने के बाद भावनात्मक स्तर पर पीड़ित पात्र है, वहीं पूनम के साथ हुए दुष्कर्म शारीरिक हिंसा से पीड़ित स्थिति को दर्शाता है| पूनम के साथ हुए शारीरिक शोषण समाज के कुलीन दिखने वाले लोगों की शर्मनाक कहानी है| उपन्यास में विधायक जी का भतीजा बिल्लू और उसका साथी पूनम का सामूहिक बलात्कार करता है| पूनम जोशी के साथ हुए इस अमानवीय कृत्य को समाज में सबसे घिनोना कर्म माना जाता है| कानून में इसके लिए सबसे कड़ी सजा देने का नियम है| लेकिन विधायक जैसे बड़े लोग हमेशा से अपने किये गए अपराध से बचते रहे हैं - "तिवारी जी ने विधायक जी के भतीजे बिल्लू समेत

अन्य चारों दोस्तों को रातोंरात किसी अज्ञात स्थान के लिए रवाना कर दिया|"[46] यहाँ भी सारे नियम कानून धरे के धरे रह जाते हैं, और अंत में मारा जाता है एक मासूम|

हिंसा किसी भी तरह की हो समाज और मानवता के लिए कभी भी लाभदायक सिद्ध नहीं हुई| आज तक विश्व में जितनी भी हिंसात्मक घटनाएँ हुई हैं सब में मनुष्य ने सिर्फ खोया ही है| किसी भी हिंसा से समाज को जितनी आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है उतना ही मानसिक और शारीरिक चोट की हानि को भी झेलना पड़ता है| विश्वयुद्ध की विभीषिका से हर कोई परिचित है| इन युद्धों से उत्पन्न स्थिति का असर आज तक हिरोशिमा और नागासाकी झेल रहे हैं| युद्ध में हर तरह की हानि के बीच एक सच्चाई स्त्री के शरीर के साथ जुड़ी हुई है जिसकी चर्चा ज्यादा नहीं हुई है, लेकिन यह युद्ध की सबसे घृणित घटनाओं में से है| 'कलिकथा वाया बाइपास' में विश्वयुद्ध के कुछ दृश्य में स्त्री के साथ युद्ध के दौरान हुए बर्ताव को लेखिका रेखांकित करती हैं| दुनिया भर के युद्धों के इतिहास में झांककर देखें तो युद्ध के दौरान बड़ी संख्या में जबरन स्त्रियों को यौनदासी बनाया गया| इस तरह की घटनाओं का उल्लेख साहित्य में बहुत कम ही किया गया है| 1965 के भारत-पाक युद्ध पर शिवसागर मिश्र ने युद्धवृत्ति और नियति को केंद्र में रखकर 'लड़ेंगे हजार साल' नामक किताब लिखी| धर्मवीर भारती ने बांग्लादेश मुक्ति संघर्ष पर 'ब्रह्मपुत्र की मोर्चाबंदी' और 'दानव वृत्ति' नाम से रिपोर्ताज लिखा| हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार फनीश्वरनाथ रेणु ने 'नेपाली क्रांतिकथा' नाम से पुस्तक लिखी है| साथ ही अज्ञेय ने 'जापानी युद्धबंदियों के साथ' शीर्षक से एक पुस्तक लिखा है| अभी तक युद्ध को लेकर लोगों के बीच आधी सच्चाई ही आ पाई थी| इन लेखकों के ने बहुत हद तक युद्ध से उत्पन्न क्षति को हर तरह से दिखाने का प्रयास किया गया है| ऐसा ही एक प्रयास 'देह ही देश' के माध्यम से गरिमा श्रीवास्तव करती हुई नजर आती हैं, जिन्होंने युद्धग्रस्त स्त्रियों और बच्चों के साथ हुए बर्ताव को अपनी किताब का हिस्सा बनाया है| किताब के पहले पृष्ठ पर ही लिखा गया है - "उन हजारों लाखों औरतों के नाम जिनकी देह पर ही लड़े जाते हैं सारे युद्ध"[47]

'कलिकथा वाया बाइपास' में युद्ध के दौरान अंग्रेजी सैनिकों के द्वारा बंगाली स्त्रियों के साथ हो रहे अमानवीय कृत्य को लेखिका कुछ इस तरह लिखती हैं - "पार्क स्ट्रीट की तरफ अमेरिकन सैनिकों को एंग्लो-इंडियन लड़कियों के गले में हाथ डालकर सटाए घूमते किशोर ने देखा था| .....सारे शहर में इन लोगों की बदमाशियों और तरह-तरह के उत्पातों के किस्से फैले हुए थे| चार-पांच साल की लड़कियों तक से बलात्कार करने की घटनाएँ हुई थीं| .....चौरंगी के सामने मैदान में बमबारी से बचने के लिए बनी खंदकों में ये लोग लड़कियों को लिए पड़े रहते थे| उसने किसी को कहते सुना था- लगता है ये लोग पुरे कलकत्ते को रंडीखाना बना देंगे|"[48] युद्ध से जितनी हानि समाज को हुई है उसकी भरपाई कभी नहीं की जा सकती है| ऐसे में सबको बैठकर आत्ममंथन करने की जरुरत है|

अतः हिंसा कभी भी समाधान का रूप नहीं ले सकता है| ऊपर वर्णित प्रसंग भी इसी ओर इशारा करते हैं| जब तक सामाजिक संरचना में स्त्रियाँ सामान दर्जा नहीं पा लेती उनकी स्थिति में बदलाव नामुमकिन है|

4.4 गालियों में स्त्री

प्रेमचंद के शब्दों में - "बेगैरत और बेशर्म बना देती है गाली, स्वाभिमान और इज्जत नष्ट कर देती है|"[49] गाली एक स्त्रीलिंग शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ किसी की निंदा या किसी को कलंकित करने से है| गालियों को समाज में असभ्यता और विकृत मानसिक प्रवृत्ति का प्रतीक माना जाता रहा है| हम जिस समाज में रहते हैं वहां गाली को अपमानजनक माना जाता है| दरअसल गालियों का चलन बहुत पुराना नहीं है, पौराणिक समय में श्राप/शाप देने का चलन हुआ करता था| यह स्थिति गुस्सा, नफ़रत, और अपमान से पैदा होती थी| आज ऐसी स्थिति में गालियों ने अपनी जगह बना ली है| गाली-गलौज, अपमान, दुत्कार, धिक्कार आदि प्रयुक्त शब्द समाज में वर्जित शब्द के तौर पर देखे जाते हैं, अतः ऐसे शब्द सभ्यता और संस्कृति के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं| हिंदी साहित्य में ऐसे कई लेखक हैं जिन्होंने अपने लेखन में गालियों को उसके उसी रूप में लिखा है जैसे सामान्य जीवन में प्रयोग किया जाता है| 'काशी का अस्सी', 'राग दरबारी' जैसे अनेकों उपन्यास हिंदी साहित्य में प्रमाण के तौर पर देखे जा सकते हैं| यहाँ साहित्य में इसके प्रयोग को लेकर आंशिक चर्चा के साथ गालियों में स्त्री का प्रयोग कैसा है उसकी बात की जाएगी| पुरस्कृत महिला साहित्यकारों के उपन्यास में इसके प्रयोग किये गए जिस परिप्रेक्ष्य में उसे देखने का प्रयास किया जाएगा| सभी उपन्यासों में प्रयोग किए गए गालियों को आगे उदाहरण सहित समझने का प्रयास किया गया है|

गालियाँ दरअसल अपमानित करने और नीचा दिखाने का एक अभद्र प्रयास है, जो गाली देने वाले की हीनता को भी एक ही समय में प्रकट करता है| आज के दौर में हम जितनी तेजी से तरक्की करते जा रहे हैं गालियों का प्रयोग भी उतनी ही तेजी से सामान्य होता जा रहा है| समाज में दी जाने वाली ज्यादातर गालियां स्त्री केन्द्रित हैं, जिसका प्रयोग सिर्फ पुरुष वर्ग तक सीमित नहीं है बल्कि बच्चे और स्त्रियाँ भी इसका प्रयोग करते नजर आ रहे हैं| आज के तकनीकि दौर में ऐसे बहुत कम लोग होंगे जो गालियों का प्रयोग नहीं करते हैं, सब ने अपने जीवन काल में

कभी न कभी एक बार तो इसका प्रयोग जरूर किया ही होगा भले ही वह थोड़ी कम आपत्तिजनक होगी| बी.बी.सी. अपनी एक रिपोर्ट में कुछ आंकड़ो के द्वारा गालियों के प्रयोग और उससे उत्पन्न स्थिति को साझा करते हुए बताते हैं कि - "इंसान आम तौर पर छह बरस की उम्र से गालियां देना शुरू कर देते हैं| यही नहीं हर आदमी अपनी जिन्दगी का औसतन आधा से पौन फीसदी वक्त गालियां देने में बर्बाद कर देता है|"[50] समाज में गाली देने के कई प्रतीक मौजूद हैं जिसमें स्त्री के अंग को ज्यादा प्रयोग में लाने का कुचलन है| पहले गालियों का स्वभाव शरीर से इतर हुआ करता था| कुछ लोगों का मानना है कि यूरोप में रेनेसां के बाद गालियों का दर्जा बदल गया था| पहले धार्मिक भावनाओं पर चोट या उसका मजाक बनाना गालियों के रूप में देखा जाता था, शरीर को लेकर किये गए भद्दे मजाक को इस दायरे में नहीं रखा जाता था| ब्रिटिश लेखिका मेलिसा मोर गालियों पर लिखी गयी अपनी किताब में कहती हैं - "कि पहले लोगों के बीच इतनी दूरियां नहीं थी, अक्सर वो एक-दूसरे को बिना कपड़ो के देखते थे| इसलिए एक-दूसरे के बदन को लेकर मजाक बनाने को गाली के तौर पर नहीं गिना जाता था|"[51]

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों को हमेशा प्रतीक के रूप में देखा गया है| कभी वो देवी होती है तो कभी दानवी| स्त्री पूजनीया तब तक मानी जाती है जब तक कि पुरुष के अधिकार क्षेत्र में हो| जहाँ वो उससे बाहर कदम रखती है तो वह दानवी हो जाती है और फिर उसे कई तरह के उपमाओं एवं प्रतीकों से अपमानित किया जाता है| आज समाज में अधिकतर गालियां यौनाचार को लेकर ही प्रयोग की जाती हैं| गालियां पुरुष प्रधान समाज की देन हैं, जिसमें स्त्री को भोग्या समझा गया है| अतः इस तरह के अपशब्द का प्रयोग विकृत सोच की उपज है| पुरुषवादी सोच के लोग समाज को अपने हिसाब से चलाना चाहते हैं लेकिन जब इनकी इस सोच का विरोध किया जाता है तो ऐसे लोगों के लिए अपशब्द की झड़ी लगा दी जाती है| या उनके बनाये गए दायरों से जब कोई खासकर स्त्री बाहर कदम रखती है तो उसे कई तरह के आपत्तिजनक शब्दों और व्यवहारों का सामना करना पड़ता है| उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग अंकित किये गए हैं|

'जिंदगीनामा' उपन्यास में ग्रामीण परिवेश में व्याप्त सभी पक्षों को दर्शाया गया है| यहाँ जितनी सिद्दत से लोगों के आपसी प्रेम को रेखांकित किया गया है उतनी ही सच्चाई से स्त्री के सभी रूपों की समाज में स्थिति को भी दिखाया है| भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज का एक बड़ा उदाहरण है| ऐसे में स्त्रियों की खासकर ग्रामीण परिवेश की स्त्रियों के जीवन को समझा जा सकता है| गालियाँ एक तरह की लैंगिक हिंसा है जो सामाजिक व्यवहार के चलन को दर्शाता है| गाली सामने वाले को मानसिक और सामाजिक स्तर पर क्षति पहुँचाने के लिए दी जाती है| 'जिंदगीनामा' में मल्कीयत सिंह का चाची मेहरी को 'लुंडी ज़नानी' कहकर संबोधित करना दरअसल सामाजिक स्तर पर नीचा दिखाने और मानसिक रूप से प्रताड़ित करने के लिए कहा गया| इस तरह का व्यवहार यहाँ लैंगिक हिंसा को दर्शाता है - "मल्कीयत सिंह ने साहिबसिंह की बाँह मरोड़ धक्का दिया- बदीदा, घर से बाहर पैर निकालने वाली लुंडी ज़नानी को वास्ते देने से पहले मर तो नहीं जाता !"[52] 'लुंडी' शब्द का अर्थ दुम कटी, घटिया, कायर एवं वह जिसका कोई आश्रयदाता न हो है|

समाज में गाली दो तरह से प्रचलन में हैं, एक जिसमें सामने वाले को अपमानित करने के भाव से दिया जाता है, दूसरा बोलचाल में सामान्य रूप से प्रयोग किया जाता है जो हँसी-मजाक के तौर पर लिया जाता है| लेकिन जब गाली का प्रयोग करीबी रिश्तों में किया गया हो तो वह सामान्य नहीं होता अतः उदाहरण के तौर पर पति-पत्नी के रिश्ते में जब गाली का प्रयोग होता है तो वह सहज नहीं माना जाएगा| ऐसे रिश्तों में गाली हमेशा अपमान के भाव से ही दी जाती है - "हीरा ने जीवां के कान में कुछ बुडबुडाया तो जीवां ने चारपाई की नंगी चौखट उठा घर के सामने पटक दी और आसपास के पड़ोसियों को सुनाकर कहा- 'अरे बेपेंदे के बर्तना, इस बरखा-मेंह में मैं भुंजे सोती-मरती हूँ| एक मंजी तो बना दे नकरमे| हीरा का हमसाया बाहर निकल आया- 'कुत्ती सुबह-सवेरे भौंकने लगी| अरे चारपाई को सडांगा बांध, पीड़ियाँ डाल तो रात तक निबड़ जाएगी|"[53]

पुरुष वर्चस्ववादी समाज यह कभी भी स्वीकार नहीं कर पाता कि कोई स्त्री किसी भी शासन तंत्र का हिस्सा हो और यदि वह उस तंत्र में सर्वोपरि हो तो यह और भी नागवार होगा| ऐसे में पितृसत्ता सिर्फ उसकी आलोचना ही करता है| उसके अनुसार स्त्री इस तरह के कामों के लिए उचित नहीं ठहरती| इतने बड़े पद को और इतनी बड़ी जिम्मेदारी को निभाना स्त्री के स्वभाव के विपरीत है ऐसा उनका मानना है| उपन्यास में एक ऐसा ही प्रसंग है जिसमें पुरुषों द्वारा स्त्रियों की कार्य कुशलता पर व्यंग करते हुए लाहौर के बिकने के बाद मुगलानी बेग़म लाहौर सूबे की ज़नानशाह बनी ऐसा दिखाया गया है| ऐसे में वर्तमान और इतिहास दोनों में स्त्री को लेकर अस्वीकार और घृणा आगे के संवाद से स्पष्ट है - "कर्मइलाही जी खौलने लगे- लख लानत ! बादशाहो, यह तो लाहौर के आला तख्त ताज की हत्तक हो गई न ! डग्गी छिनाला ज़नानी सूबेदार बन बैठी ! चौधरी फ़तेहअली ने हामी भरी- सच कहते हो कर्मइलाही जी ! कहा है न किसी ने कि लंड-भंड सब इकट्ठे !"[54] पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों के अधीन होकर रहना अस्वीकार है| ऐसे में इनका विरोध हिंसा के कई स्तरों से होकर गुजरता है जिसकी शुरुआत गालियों के द्वारा नीचा दिखाने से होती है|

हमारे समाज में स्त्रियों को एक पति और एक विवाह को सम्माननीय माना गया है, लेकिन वहीं पुरुष का एक से अधिक पत्नी होना सामान्य है| ऐसे में दो पत्नियों के बीच के संबंध कुछ ख़ास अच्छे नहीं होते हैं| अधिकतर समय उनके बीच के मनमुटाव और हीनता को बखूबी देखा जा सकता है| ऐसे संबंधों में ज्यादातर गाली-गलॉज को देखा जाता रहा है| उपन्यास के दो स्त्री पात्र गोमा और भोली के पति एक होने की वजह से आये दिन दोनों एक-दूसरे के लिए तीखे शब्दों अर्थात् गालियों का प्रयोग करती रहती हैं - "मेरे मना, तू ही बता, इसमें मेरा क्या दोख ! कटोरा-भर दूध का उसकी मंजी की ओर बढ़ी ही थी कि पीछे से झुझका मार भड़वी ने मेरी चुटिया खींच ली| बकारा करने लगी- अरी कुतिए, कभी मेरी ओर भी देखने दिया कर इसे ! हाय रे जुल्मिया, तू विरला ही नहीं जन्मा दो ज़नानियोंवाला|... हैं री कंजरिए, दस साल से यह मेरा मर्द ! तू कल

परणाई और उस पर पूरा कब्ज़ा कर लिया| हाय-हाय री, सड़े तेरी सेज !"[55] 'जिंदगीनामा' उपन्यास में ऐसे अनेकों वर्जित शब्द का प्रयोग किया गया है जो बोलचाल की भाषा में सामान्य हैं| उदाहरण के लिए उपन्यास में दिए गए कुछ और अपशब्द इस प्रकार हैं- दलालों की धिया, बाँझ-बंजर, जांगलू, लबड़घोघी रोंगटिया, कुत्तेखानी, औत्तरी, बैऔलादिए, लट्टबौरिये आदि|

'कलिकथा वाया बाइपास' आजादी से पहले और बाद के आधुनिक दौर का चित्र प्रस्तुत करता है| उपन्यास में कहानी कई स्तरों से होती हुई गुजराती है| उपन्यास कभी वर्तमान तो कभी इतिहास के पन्नों को पलटता हुआ कुछ महापुरुषों की वैचारिकी से मुखातिब कराता है| इतिहास जो पराधीन था अंग्रेजी शासन व्यवस्था की कई झाकियाँ प्रस्तुत करता है| अंग्रेजो के व्यवहार का यहाँ कई परतों में उल्लेख किया गया है| भारतवासियों ने जितनी यातनाएं झेली उससे यह अटकलें जरूर लगायी जाती रही है कि अंग्रेज जल्लाद हुआ करते थे, लेकिन ऐसा बिलकुल नहीं था कि अंग्रेज इंसान नहीं थे, कुछ ऐसे भी प्रसंग हैं जो उनकी इन्सानित का सबूत पेस करते है| वो अलग बात है कि ऐसे इंसान की संख्या बहुत कम थी, ज्यादातर इनकी अमानवीय तस्वीर ही सामने आती है| उपन्यास में ट्रेन के सफ़र का एक वाकया दिखाया गया है जिसमें अंग्रेजों के बुरे और अमानवीय बर्ताव का उल्लेख मिलता है| भरतीयों को मानव न समझना अंग्रेजों की विकृत मानसिकता को दर्शाता है| यहाँ के लोगों को गाली देना उनके स्वभाव का हिस्सा था - "आप भूल गए वह अपमान जो पहली बार बारह साल की उम्र में दिल्ली से कलकत्ते की रेलयात्रा करते हमने झेला था? ... बड़े हैमिल्टन साहब की पत्नी ने रस्सी से खींचा जानेवाला झालरदार कपड़े का पंखा झुलानेवाले बूढ़े को अपने जूते की नोक से ठोकर मारते हुए कहा था- 'क्या करता है तुम सुस्त पाजी सुअर|"[56] यहाँ किसी एक व्यक्ति का नहीं बल्कि यह पूरे समाज का अपमान था| अतः ऐसी परिस्थिति से भारतीय समाज के प्रति अंग्रेजों के मन में नफ़रत का भाव दिखता है| शासक वर्ग के द्वारा किया गया ऐसा व्यवहार पराधीन वर्ग को न सिर्फ सामाजिक रूप से अपने अधीन करता है बल्कि मानसिक स्तर पर भी उसे गुलाम बनाता है|

समाज में कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग परिचय के तौर पर किसी जाति धर्म और लिंग के लिए किया जाता है| भंगी, मलेच्छ, हिजड़ा, छक्का, किन्नर आदि ऐसे ही शब्द हैं जो सामान्य रूप से समाज में लोगों के बीच प्रचलित हैं| दरअसल ऐसे शब्दों का प्रयोग गाली के ही रूप में किया जाता रहा है, लेकिन एक लम्बे समय से इसके प्रयोग ने इसे सामान्य कर दिया है| ऐसा बिलकुल भी नहीं है जिनके लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है उन्हें बुरा नहीं लगता है, परन्तु लोग अब इसे अनसुना करना ज्यादा सही समझते हैं - "सुभाष बाबू ने 'हिजड़े' शब्द का प्रयोग किया था उन बंगालियों के लिए, जिनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर सिविल सर्विस में जाना था|"[57] दरअसल हिजड़ा शब्द लिंग दोष को बताता है| और समाज में इसे एक रोग की तरह माना जाता रहा है| अतः यहाँ ऐसे शब्द का प्रयोग किसी की शारीरिक क्षमता को लेकर प्रश्न करता है, जो संवेदनशून्य मन का प्रतीक है|

'पारिजात' गंगा-जमुनी तहजीब को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है| परंपरा और आधुनिकता के अनेकों दृश्य इस उपन्यास की सजीवता को प्रकट करता हुआ अंत में आदर्श के पहलू से बंध जाता है| समाज में कुछ अपशब्द ऐसे हैं जो खासकर स्त्री के लिए ही बनाये गए हैं| ऐसे शब्द स्त्री के अंगों खासकर उसकी यौनिकता को लेकर नहीं बल्कि उसके व्यवहार को इंगित करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है| किसी भी समाज में डोमनी, चुड़ैल, पापिन, भूतनी, आदि जैसे शब्द स्त्री को समाज से बहिस्कृत करने के लिए बनाए गए हैं| उपन्यास में रामदुलारी एक कहानी कहती है जिसमें डोमनी, नासपीटी, चुड़ैल जैसे शब्द एक स्त्री के द्वारा दूसरी स्त्री के लिए प्रयोग किया गया है| यह कहानी समाज की वैसी सच्चाई है जो एक स्त्री को दूसरे से कमतर और कमजोर साबित करती है| ऐसे शब्द उन स्त्रियों के लिए समाज अपनाता आया है जो हठी और पुरुष से हामी न भरने वाली होती हैं| ऐसी स्त्रियाँ समाज से लड़ती और सवाल करती हैं| इनका न डरना ही इन्हें ऐसी कहानी में डाल कर कमतर करता है| अमला का बदला लेने की बात दरअसल समाज की असामनता और क्रूरता को दिखाता है, जो पितृसत्तात्मक सोच से लोहा लेने

की बात करता है| ऐसे में वो स्त्री अच्छी तो बिलकुल नहीं हो सकती| अतः ऐसे विरोध और प्रतिकार को रोकने के लिए ही ऐसी कहानियां सुनी-सुनाई जाती हैं - "सुने रहे कि अमला 'डोमनी' प्रेम में पड़ गले में रस्सा डालकर श्मशान के पेड़ से लटक गई रही| अमला मरते-मरते बोली थी कि मैं नहीं मोर आत्मा बदला लेगी| किसी को आराम से जीने न दूँगी|"[58] कहानी में अमला की आपबीती समाज की उस व्यवस्था में व्याप्त भेद-भाव को दिखाती है|

समाज में ऐसे कुछ दायरे हैं जो किसी स्त्री को देवी तो किसी को दानवी बनाता है| ऐसी परिस्थितियों में एक को सम्मान तो दूसरे को अपमान झेलना पड़ता है| अमला और तहसीलदारिन ऐसी ही सोच के उदाहरण है, जिसमें एक सम्माननीय है तो दूसरी कलंक - "सरकार की बच्ची ! तहसीलदारिन दांत पीस बोलीं, फिर धमकाने लगीं, जाती है यहाँ से कि नहीं''जानती है मैं कौन हूँ, पति की खातिर नरक, स्वर्ग एक कर दूँगी| ठहर तो 'चुड़ैल' !"[59]

गाली किसी भी समाज के लिए एक शर्मनाक पहलू की तरह है, वैसे तो गाली एक स्त्रीलिंग शब्द है लेकिन इसका यह अर्थ बिलकुल नहीं हैं कि इसे सिर्फ स्त्रियों पर इस्तेमाल किया जाता है, बल्कि तमाम मानव जाति को दी जाती है| उपन्यास 'मिलजुल मन' में लेखिका गाली के लिंग निर्धारण से अपनी असहमति जताती हैं| उपन्यास में 'मिस हुक्कू' एक ऐसी ही पात्र हैं जिन्हें उनके स्कूल की लड़कियों के द्वारा कई तरह की गालियों से संबोधित किया जाता है| मिस हुक्कू कभी हिटलर हुक्कू, तो कभी वह हुक्कू डायन, और कमीनी हो जाती तो कभी जाहिल औरत और हरामज़ादी हो जाती| ऐसा इसलिए क्योंकि यहाँ गाली सिर्फ अपने मन का विकार निकालने के लिए दी गयी है| वैसे ये सभी गालियाँ मिस की अनुपस्थिति में दी जा रही होती हैं जिसका मकसद सिर्फ अपने मन को तसल्ली देने भर से था - "यानी वे किसी और स्कूल में उसी 'हिटलराना' अंदाज में तकलीफ़ का कारोबार चलाती होंगी| ...इसका यह मतलब नहीं कि मैंने पलभर को हुक्कू 'डायन' को माफ़ कर दिया हो| ...उस जाहिल औरत ने हमेशा के लिए मेरे चेहरे का रंग बिगाड़

कर रख दिया| ....हां खासी 'हरामज़ादी' चीज़ थी| मैंने कहा तो फ़ौरन बोली, मर्दाना गाली मत दे ! ले ! मैंने कहा, गली का क्या मर्दाना-औरताना| गाली कोई दे, गाली होती है|"[60]

उपन्यास में रहमतुल्ला को 'मलेच्छ' कहना जातिगत तौर से अपमानित करने जैसा है, तो मैजिस्ट्रेट सेनगुप्त और बैजनाथ की बात को 'रांड रोना' कहता है जिसका अर्थ मजबूर आदमी के दुखड़े से है| जिनको समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है| हमारा सभ्य समाज कई स्तरों पर बंटा हुआ है| हमारे समाज में ऐसी कुछ जातियां हैं जिसे गाली के तौर पर प्रयोग किया जाता है और कुछ व्यवसाय भी ऐसे हैं जिन्हें गाली के तौर पर देखा जाता है| ऊपर के ये दो शब्द उन्हीं में से ही एक हैं|

'किन्नर', 'हिजड़ा', 'छक्का' जैसे लिंग सूचक शब्द समाज में गाली के तौर पर प्रयुक्त किये जाते हैं| समाज में ऐसे शब्दों का प्रयोग किसी का अपमान करने अर्थात् उसके शारीरिक दोष का मजाक बनाने के दृष्टिकोण से दिया जाता है| 'नाला सोपारा' इन्हीं शब्दों से निजात पाने और मनुष्य को मनुष्य समझने और मनुष्य बने रहने की कथा है|

समाज कहने से सीधा संबंध समूह में रहने वाले व्यक्ति से होता है और व्यक्तियों के संबंधों के अंतर्जाल से परिवार बनता है| समाज और परिवार की ऐसी अनेकों परिभाषाएँ हैं जो उनके आपसी संबंधों को दर्शाती हैं| भारतीय समाज में हाशिये पर खड़े लोगों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार के पीछे पितृसत्तात्मक सोच एक महत्त्वपूर्ण कारण है| किसी भी समाज को अनुशासित रूप से चलाने के लिए विवाह संस्था को बनाया गया जिसमें धर्म का अनुपालन जोड़ा गया| भारतीय समाज में धर्म परिवार की स्त्रियों के लिए पुरुषों की अपेक्षा अधिक कठोर रुख अपनाता है| प्राचीन समय से देखें तो स्त्रियों के प्रति समाज का रवैया काफी क्रूर था| सती प्रथा इसका सटीक उदाहरण है| इसके अतिरिक्त बाल विवाह, विधवा विवाह का, दास प्रथा, देव दासी, बहुपत्नी विवाह व्यवस्था थी| इन तमाम कुप्रथा से दबी स्त्री का सच जितना दर्दनाक है उतना ही निंदनीय भी| समाज तरक्की करता गया और स्त्रियों की स्थिति में सुधार भी आता गया, लेकिन आज भी ऐसी कई

समस्याएँ हैं जो स्त्री को समाज में उसका उचित स्थान नहीं दिला पायी है| अतः ऊपर के प्रसंगों से कुछ बातें स्पष्ट होती है कि गलियों में स्त्री पितृसत्तात्मक समाज की ही उपज है| इसके साथ ही लेखिकाओं के उपन्यास में गलियों के प्रयोग को लेकर सजगता को एक अच्छी पहल के तौर पर देख सकते हैं|

सन्दर्भ सूची -

1. नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे, सं. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, पृष्ठ.3

2. मालती डगलस, इनसाक्लोपीडिया ऑफ सेक्स एंड जेंडर, पृष्ट-54

3. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, पृष्ठ-495

4. नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे, सं. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, पृष्ठ-5

5. हंस, अतीत होती सदी, खंड-3, पृष्ठ-7

6. वही, पृष्ठ-12

7. नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे, सं. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, पृष्ठ-10

8. आज का स्त्री आन्दोलन, सं. रमेश उपाध्याय, पृष्ठ-9-10

9. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-188

10. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, पृष्ठ-76

11. मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, पृष्ठ-41

12. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, पृष्ठ-53

13. प्रभा खेतान, स्त्री-उपेक्षिता, पृष्ठ-20

14. गिडा लर्नन, द क्रियेसन ऑफ पेट्रीयार्की, पृष्ठ-28

15. कात्यायनी, स्त्रियों की पराधीनता, पृष्ठ-28

16. स्त्री-भूमंडलीकरण : पित्री-सत्ता के नए रूप(खंड-2), पृष्ठ-36

17. वही, पृष्ठ-48

18. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृष्ठ-27

19. वही, पृष्ठ-28-29

20. वही, पृष्ठ-25

21. कात्यायनी, स्त्रियों की पराधीनता, पृष्ठ-28

22. अलका सरावगी, कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ-60

23. मृदुला गर्ग, मिलजुल मन, पृष्ठ-37

24. वही, पृष्ठ-313

25. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृष्ठ-68

26. प्रभा खेतान, स्त्री-उपेक्षिता, पृष्ठ-32

27. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृष्ठ-29

28. वही, पृष्ठ-30

29. अलका सरावगी, कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ-70

30. मृदुला गर्ग, मिलजुल मन, पृष्ठ-240

31. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृष्ठ-455-56

32. राजेन्द्र यादव(संपा.), स्त्री भूमंडलीकरण : पितृ-सत्ता के नए रूप, पृष्ठ-207

33. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृष्ठ-44-45

34. वही, पृष्ठ-49

35. वही, पृष्ठ-76

36. अलका सरावगी, कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ-70

37. वही, पृष्ठ-67

38. वही, पृष्ठ-58

39. वही, पृष्ठ-58-59

40. वही, पृष्ठ-61

41. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृष्ठ-48

42. चित्रा मुद्गल, नाला सोपारा, पृष्ठ-11

43. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृष्ठ-118

44. वही, पृष्ठ-125

45. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृष्ठ-57

46. चित्रा मुद्गल, नाला सोपारा, पृष्ठ-205

47. गरिमा श्रीवास्तव, देह ही देश, पृष्ठ-आवरण से

48. अलका सरावगी, कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ-143

49. http:www.Pratibhaekdiary.com

50. http://www.bbc.com

51. https://www.bbc.com/hindi/international/2016/03

52. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृष्ठ-52

53. वही, पृष्ठ-124

54. वही, पृष्ठ-155

55. वही, पृष्ठ-163

56. अलका सरावगी, कलिकथा : वाया बाइपास, पृष्ठ-53

57. वही, पृष्ठ-103

58. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृष्ठ-63

59. वही, पृष्ठ-65

60. मृदुला गर्ग, मिलजुल मन, पृष्ठ-14-15